CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२२६३

अपभ्रंश व्याकरण

16.2

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ंस्थान

....

....

लौटानेकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२२६३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपभ्रंश व्याकरण

आचार्य श्री हेमचन्द्र

अनुवादक
शालिग्राम उपाध्याय
साहित्यशास्त्राचार्य एम० ए०

भाषा परिषद्, वाराणसी की ओर से प्रकाशक

राजकमल प्रकाशन
दिल्ली बम्बई इलाहाबाद पटना मद्रास

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशक
भाषा परिषद्, वाराणसी की ओर से
राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली।

© शालिग्राम उपाध्याय, १९५८

मूल्य दो रुपये

मुद्रक
रामनिधि त्रिपाठी
मायापति प्रेस, मध्यमेश्वर, वाराणसी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

* ॐ *

अपभ्रंश-व्याकरण

स्वराणां स्वराः प्रायोपभ्रंशे ॥४॥३२६॥

अपभ्रंशे स्वराणां स्थाने प्रायः स्वरा भवन्ति ।

अपभ्रंश भाषा में स्वरों के स्थान पर प्रायः स्वर ही रहते हैं। जैसे (सं० कच्चित्) अप० कच्चु, काच्च । (सं० वेणी) अप० वेण, वीण । (सं० बाहु) अप० बाह, बाहा, बाहु ॥ (सं० पृष्ठ) अप० पट्ठि, पिट्ठि, पुट्ठि ॥ (सं० तृण) अप० तणु, तिणु, तृणु । (सं० सुकृतम्) अप० सुकिदु, सुकिओ, सुकृदु ॥ (सं० क्लिन्न) अप० किन्नओ, किलिन्नओ ॥ (सं० लेखा) अप० लिह, लीह, लेह ॥ (सं० गौरी) अप० गउरि, गोरि ॥ प्रायो ग्रहणाद्यस्यापभ्रंशे विशेषो वक्ष्यते तस्यापि क्वचित्प्राकृतवत् शौरसेनीवच्च कार्यं भवति । सूत्र में 'प्रायः' लिखने का अभिप्राय यह है कि किसी शब्द का अपभ्रंश रूप जहाँ कहा जायगा, वहाँ भी प्राकृत अर्थात् महाराष्ट्री प्राकृत, और शैरसेनी प्राकृत के समान कार्य होगा।

स्यादौ दीर्घह्रस्वौ ॥३३०॥

अपभ्रंशे नाम्नोन्त्यस्वरस्य दीर्घह्रस्वौ स्यादौ प्रायो भवतः ।

अपभ्रंश भाषा में सि=सु आदि विभक्तियाँ परे रहें तो संज्ञा शब्दों के अन्त्यस्वर का प्रायः दीर्घ या ह्रस्व हो जाया करता है। जैसे प्रथमा एक वचन सि (सं० सु) परे रहने पर—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ढोल्ला सामला धण चम्पा-वण्णी ।
णाइ सुवण्णरेह कस-वट्टइ दिण्णी ॥१॥
[विटः श्यामलः धन्या चम्पकवर्णा ।
इव सुवर्णरेखा कषपट्टके दत्ता ॥१॥]

दूल्हा (दुर्लभ) श्यामल है और धन्या=प्रिया चंपकवर्ण की है (वे दोनों ऐसे लगते हैं) मानो कसौटी पर सुवर्ण की रेखा खिंची हो ॥१॥

यहाँ पर 'ढोल्ल' और 'सामल' ह्रस्वान्त थे जो दीर्घान्त प्रयुक्त हैं। 'धण' और 'सुवण्णरेह' में अन्त्य स्वर दीर्घ से ह्रस्व हो गए हैं; धन्या-धण्णा, सुवर्ण रेखा—'सुवण्णरेहा' का ह्रस्वांत प्रयोग है।

आमन्त्र्ये—(अमन्त्रण अर्थात् जहाँ संबोधन रहे वहाँ भी दीर्घ का ह्रस्व और ह्रस्व का दीर्घ होता है) जैसे—

ढोल्ला मइँ तुहुँ वारिया मा कुरु दीहा माणु ।
निद्दए गमिही रत्तडी दडवड होइ विहाणु ॥ २ ॥
[विट मया त्वं वारितः मा कुरु दीर्घं मानम् ।
निद्रया गमिष्यति रात्रिः शीघ्रं (दडवड) भवति विभातम् ॥२॥]

(हे दुल्लह ! मैंने तुझे बरजा कि दीर्घ मान मत कर, अन्यथा नींद ही नींद में (से) रात बीत जायगी और झटपट विहान हो जायगा।) यहाँ संबोधन 'ढोल्ला' में ह्रस्व का दीर्घ हो गया है। दडवड (दे०) शीघ्र, झटपट-मराठी।

स्त्रियाम्—स्त्री-लिङ्ग में भी ह्रस्व का दीर्घ और दीर्घ का ह्रस्व होता है। जैसे—

बिट्टीए मइ भणिय तुहुँ मा करु वङ्की दिट्ठि ।
पुत्ति सकण्णी भल्लि जिवँ मारइ हियइ पइट्ठि ॥ ३ ॥
[पुत्रि (बिट्टीए) मया भणिता त्वं मा कुरु वक्रां दृष्टिम् ।
पुत्रि सकर्णा भल्लिर्यथा मारयति हृदये प्रविष्टा ॥ ३ ॥]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(हे बिटिया, मैंने तुझसे कहा था कि बाँकी दृष्टि मत कर। हे बिटिया, ऐसी दृष्टि नोकदार बरछी के समान हृदय में पैठकर मारती है।) यहाँ पर बिट्टि को 'बिट्टीए' दीर्घ हो गया है। 'पुत्ति' में ह्रस्व स्वर हो गया।

जसि—(जस् विभक्ति अर्थात् प्रथमा के बहुवचन में भी उपर्युक्त नियम लगता है) यथा—

एइ ति घोडा एह थलि एइ ति निसिआ खग्ग।
एत्थु मुणीसिम जाणिअइ जो नवि वालइ वग्ग ॥ ४ ॥

[एते ते अश्वाः (घोडा) एषा स्थली एते ते निशिताः खड्गाः।
अत्र मनुष्यत्वं (पौरुषं) ज्ञायते यः नापि वल्गां वालयति ॥ ४ ॥]

(ये वे घोड़े हैं, यह वह युद्धस्थली है, ये वे तीक्ष्ण तलवारे हैं, यहीं पर उसकी मुणीसिम = पौरुष की परीक्षा होगी जो घोड़े की बाग नहीं मोड़ेगा।) यहाँ पर 'एते ते' के लिए 'एइ ति' तथा 'खड्गाः' के लिए 'खग्ग' ह्रस्वांत रूप प्रयुक्त हैं।

एवं विभक्त्यान्तरेष्वप्युदाहार्यम् ॥ (इसी प्रकार अन्य विभक्तियों के परे रहने पर भी ह्रस्व का दीर्घ और दीर्घ का ह्रस्व स्वर का उदाहरण दें।

स्यमोरस्योत् ॥ ३३१ ॥

अपभ्रंशे अकारस्य स्यमोः परयोः उकारो भवति। (अपभ्रंश भाषा में प्रथमा और द्वितीया के एकवचन परे रहते अकार को उकार हो जाता है—

यथा—दहमुहु भुवणभयंकरु तोसिअ-संकरु णिग्गउ रहवरि चडिअउ
चउमुहु छंमुहु झाइवि एक्कहिं लाइवि णावइ दइवें घडिअउ ॥

दशमुखः भुवनभयङ्करः तोपितशङ्करः
निर्गतः रथवरे (रथोपरि) आरूढः।
चतुर्मुखं षण्मुखं ध्यात्वा
एकस्मिन् लगित्वा इव दैवेन घटितः ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(भगवान शंकर को संतुष्ट कर रथ पर आरूढ़ होकर निकला हुआ भुवन भयङ्कर दशमुख (रावण) ऐसा लग रहा था मानो देवों ने चतुर्मुख = ब्रह्मा और षण्मुख = कार्तिकेय का ध्यान कर तथा उन दोनों के योग से उसे बनाया है।)

यहाँ पर प्रथमा के एकवचन में दहमुहु, भुवण-भयंकरु, तोसिय-संकरु, णिग्गउ आदि शब्दों में अकार को उकार हो गया है। इसी प्रकार द्वितीया के एकवचन में भी चउमुहु, छंमुहु आदि में अम् परे रहते अकार को उकार हो गया है।

सौ पुंस्योद्वा ॥ ३३२ ॥

अपभ्रंशे पुल्लिङ्गे वर्तमानस्य नाम्नोकारस्य सौ परे ओकारो वा भवति। (अपभ्रंश भाषा में पुल्लिग में संज्ञा के अंतिम अकार को प्रथमा के एकवचन में विकल्प से ओकार हो जाता है।) यथा—

अगलिय-नेह-निवट्टाहं जोअण-लक्खु वि जाउ।
वरिस सएणवि जो मिलइ सहि सोक्खहं सो ठाउ ॥ १ ॥
[अगलित-स्नेहनिर्वृत्तानां योजनलक्षमपि जायताम्।
वर्षशतेनापि यः मिलति सखि सौख्यानां स स्थानम् ॥ १ ॥]

(जिनका स्नेह निकला नहीं है ऐसे स्नेह से परिपूर्ण व्यक्ति लाख योजन भी चले जाँय पर हे सखि, सैकड़ों वर्षों पर भी जो मिलते हैं वही सुख का स्थान है।)

यहाँ 'जो' और 'सो' में अकार को ओकार हो गया है।

पुंसीति किम्। सूत्र में पुल्लिग शब्द का ग्रहण क्यों किया गया है ? उत्तर—इसलिए कि अगले उदाहरण में जहाँ नपुंसकादि है, वहाँ के अकार को ओकार न हो, यथा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अङ्गहिँ अङ्गु न मिलिउ हलि अहरें अहरु न पत्तु।
पिअ जोअन्तिहेँ मुह-कमलु एम्वइ सुरउ समत्तु ॥ २ ॥
[अङ्गैः अङ्गं न मिलितं सखि (हलि) अधरेण अधरः न प्राप्तः।
प्रियस्य पश्यन्त्याः मुख कमलं एवं सुरतं समाप्तम् ॥ २ ॥]

हे सखि, (प्रियतम के) अङ्गों से न तो (मेरा) अंग मिला, न तो उनके अधर से मेरा अधर मिला, प्रिय के मुख कमल को देखते-देखते ही सुरत समाप्त हो गया।)

यदि सूत्र में पुंलिंग के लिए ही नियम नहीं बनाया जाता तो उपर्युक्त दोहे में 'अङ्गु' और 'मुह कमलु' नपुंसक में भी ओकार हो जाता तब 'अङ्गों' और 'मुह कमलो' रूप होने लगता।

एट्टि ॥ ३३३ ॥

अपभ्रंशे अकारस्य टायामेकारो भवति। (अपभ्रंश भाषा में तृतीया के एकवचन में (टा विभक्ति परे रहते) अंतिम अकार को 'ए' होता है) यथा—

जे महु दिण्णा दिअहडा दइएँ पवसन्तेण।
ताण गणन्तिए अङ्गुलिउ जज्जरिआउ नहेण ॥ १ ॥
[ये मम दत्ताः दिवसाः दयितेन प्रवसता।
तान् गणन्त्याः (मम) अङ्गुलयः जर्जरिता नखेन ॥ १ ॥]

(प्रवास करते समय प्रियतम ने जो दिन (मुझे अवधि रूप में) दिए थे, उन्हें गिनते हुए नखों से मेरी अंगुलियाँ जर्जरित हो गई हैं) यहाँ पर 'दइएँ' में 'अ' का 'ए' हो गया है।

ङिनेच्च ॥ ३३४ ॥

अपभ्रंशे अकारस्य ङिना सह इकार एकारश्च भवतः। (अपभ्रंश में सप्तमी के एकवचन में अंतिम अकार को इकार, और एकार होते हैं। यथा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सायरु उप्परि तणु धरइ तलि घल्लइ रयणाइं ।
सामि सुभिच्चु वि परिहरइ संमाणेइ खलाइं ॥ १ ॥
[सागरः उपरि तृणानि धरति तले क्षिपति (घल्लइ) रत्नानि ।
स्वामी सुभृत्यमपि परिहरति संमानयति खलान् ॥ १ ॥]

(सागर तृणों को तो अपने ऊपर धारण करता है और रत्नों को भीतर तले में डालता है, स्वामी सुभृत्य को तो छोड़ता है और खलों का सम्मान करता है।)

यहाँ पर 'तलि' में सप्तमी के एकवचन में अकार को इकार हो गया है। 'तलि' के स्थान पर 'तले' भी होता है जो अकार को एकार का उदाहरण है।

भिस्येद्वा ॥ ३३५ ॥

अपभ्रंशे अकारस्य भिसि परे एकारो वा भवति। (अपभ्रंश में तृतीया के बहुवचन की विभक्ति परे रहे तो अकार को विकल्प से एकार होता है।) यथा—

गुणेँहिँ न संपइ कित्ति पर फल लिहिआ भुञ्जन्ति ।
केसरि न लहइ बोड्डिअ वि गय लक्खेँहिं घेप्पन्ति ॥ १ ॥
[गुणैः न संपत् कीर्तिः परं (जनाः) फलानि लिखितानि भुञ्जन्ति ।
केसरी कपर्दिकामपि (बोड्डिअ) न लभते गजाः लक्षैः गृह्यन्ते ॥१॥]

(गुणों के द्वारा संपत्ति नहीं, कीर्ति मिलती है, किंतु मानव जो भाग्य में) लिखा रहता है उसी को प्राप्त करते हैं। (उपभोग करते हैं), सिंह एक कौड़ी भी नहीं प्राप्त करता अर्थात् एक कौड़ी का भी नहीं होता और हाथी लाखों रुपयों से खरीदे जाते हैं।)

यहाँ पर 'गुणहिं' और 'लक्खेहिं' में विकल्प से एकार हुआ है। एकार के अभाव में अकार ही रह जाता है। 'गुणहिं' अभाव का उदाहरण है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ङसे हें हू ॥ ३३६ ॥

अस्येति पञ्चम्यन्तं विपरिणम्यते। अपभ्रंशे अकारात् परस्य ङसे हें हु इत्यादेशौ भवतः ॥ (अपभ्रंश में अकार से परे पञ्चमी के एकवचन की विभक्ति को हे और हु आदेश होते हैं।) यथा—

वच्छहें गृण्हइ फलइँ जणु कडु-पल्लव वज्जेइ।
तो वि महद्दुमु सुअणु जिवँ ते उच्छङ्गि धरेइ ॥ १ ॥

[वृक्षात् गृह्णाति फलानि जनः कटुपल्लवान् वर्जयति।
तथापि महाद्रुमः सुजन इव तान् उत्सङ्गे धरति ॥ १ ॥]

(मानव वृक्ष से फलों को ग्रहण करता है और कटुपल्लवों को छोड़ देता है; तो भी महान् द्रुम सुजन के समान उन्हें अपने उत्संग (गोद) में धारण करता है।

यहाँ पञ्चमी के एकवचन की विभक्ति को 'वच्छहें' में 'हें' हो गया है। जहाँ 'हु' होगा वहाँ 'वच्छहु' रूप बनेगा।

वच्छहु गृण्हइ —(वृक्ष से ग्रहण करता है)

भ्यसो हुं ॥ ३३७ ॥

अपभ्रंशे अकारात्परस्य भ्यसः पञ्चमी बहुवचनस्य हुं इत्यादेशो भवति। (अपभ्रंश में अकार से परे पञ्चमी के बहुवचन 'भ्यस्' विभक्ति को 'हुं' आदेश होता है।) यथा—

दूरुड्डाणें पडिउ खलु अप्पणु जणु मारेइ।
जिहं गिरि-सिङ्गहुं पडिअ सिल अन्नु वि चूरु करेइ॥ १ ॥

[दूरोड्डाणेन पतितः खलः आत्मानं जनं (च) मारयति।
यथा गिरिश्रृङ्गेभ्यः पतिता शिला अन्यदपि चूर्णी करोति ॥ १ ॥]

(ऊँचा जाकर गिरा हुआ खल अपने साथ ही औरों (अपने जनों को) भी मारता है। जैसे गिरि शिखरों से गिरी हुई शिला अपने साथ-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साथ अन्य को भी चूर-चूर कर देती है।) यहाँ पर 'गिरि सिङ्गहुं' में भ्यस् के स्थान पर 'हुं' आदेश हुआ है।

ङसः सु-हो-स्सवः ॥ ३३८ ॥

अपभ्रंशे अकारात् परस्य ङसः स्थाने सु, हो, स्सु इति त्रय आदेशा भवन्ति। (अपभ्रंश में अ कार से परे षष्ठी के एकवचन की ङस् विभक्ति के स्थान पर सु, हो और स्सु ये तीन आदेश होते हैं।) यथा—

जो गुण गोवइ अप्पणा पयडा करइ परस्सु।
तसु हउँ कलिजुगि दुल्लहहो बलि किज्जउँ सुअणस्सु ॥ १ ॥
[यः गुणान् गोपयति आत्मीयान् प्रकटान् करोति परस्य।
तस्य अहं कलियुगे दुर्लभस्य बलिं करोमि सुजनस्य ॥ १ ॥]

(जो अपने गुणों को छिपाता है तथा अन्य के गुणों को प्रकट करता है ऐसे इस कलियुग में दुर्लभ सज्जन पुरुष पर मैं बलि जाता हूँ।)

यहाँ 'परस्सु', 'तसु' और 'दुल्लहहो' षष्ठी के एकवचन के रूप हैं।

आमो हं ॥ ३३९ ॥

अपभ्रंशे अकारात्परस्यामो हमित्यादेशो भवति। (अपभ्रंश में अकार से परे जो षष्ठी की बहुवचन-विभक्ति उसके स्थान पर 'हं' आदेश होता है। यथा—

तणहँ तइज्जी भङ्गि न वि तें अवड-यडि वसन्ति।
अह जणु लग्गिवि उत्तरइ अह सह सइं मज्जन्ति ॥
[तृणानां तृतीया भङ्गी नापि (= नैव); तानि अवटतटे वसन्ति।
अथ जनः लगित्वा उत्तरति अथ सह स्वयं मज्जन्ति ॥१॥]

(अवटतट किनारे पर लगे हुए तृणों की तीसरी भङ्गी (दशा) नहीं होती, या तो लोग उसे पकड़ कर जल से पार उतर जाते हैं या उसके साथ ही डूब जाते हैं।) एक टीकाकार का विचार है कि अन्य शूर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्यक्ति भी दो ही काम करते हैं या तो जीते हैं तो शत्रु पर विजय कर के या मर जाते हैं। ये दो ही प्रकार उनके होते हैं।

यहाँ पर 'तणहँ' षष्ठी के बहुवचन का (आम् विभक्ति का) रूप है।

हुं चेदुद्भ्याम् ॥३४०॥

अपभ्रंशे इकारोकाराभ्यां परस्यामो हुं हं चादेशौ भवतः। (अपभ्रंश में इकार उकार से परे षष्ठी-बहुवचन की आम् विभक्ति के स्थान में 'हुं' और 'हं' भी आदेश होते हैं।) यथा—

दइवु घडावइ वणि तरुहुँ सउणिहँ पक्क फलाइं।
सो वरि सुक्खु पइट्ठ णवि कण्णहिं खल वयणाइं ॥१॥
[दैवः घटयति वने तरूणां शकुनीनां (कृते) पक्क फलानि।
तद्वरं सौख्यं प्रविष्टानि नापि कर्णयोः खलवचनानि ॥१॥]

(दैव वन में पक्षियों के लिए वृक्षों के फलों को रचता है, (उनके उपभोग का) वह सुख अच्छा है पर कानों में खल वचन का आना अच्छा नहीं।)

यहाँ 'तरुहुँ' और 'सउणिहँ' षष्ठी-बहुवचन के रूप हैं। प्रायोधिकारात् क्वचित्सुपोऽपि हुं। सं० ३२९ सूत्र में जो 'प्रायः' ग्रहण किया गया है उसीके अधिकार के कारण कहीं-कहीं पर 'सुप्' सप्तमी के बहुवचन में भी 'हुं' आदेश हो जाता है। यथा

धवलु विसूरइ सामिअहो गरुआ भरु पिक्खेवि।
हउँ कि न जुत्तउ दुहुँ दिसिहिं खण्डइँ दोण्णिकरेवि ॥२॥
[धवलः खिद्यति (विसूरइ) स्वामिनः गुरुं भारं प्रेक्ष्य।
अहं किंन युक्तः द्वयोर्दिशोः खण्डे द्वे कृत्वा ॥२॥]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(अपने स्वामी के गुरु भार (अधिक परेशानी) को देख कर धवल (बैल) विसूरता है (खेद करता है) कि मैं ही दो खण्ड करके क्यों न दोनों ओर जोत दिया गया ।)

यहाँ पर 'दुहुँ' सप्तमी के बहुवचन का रूप है । अपभ्रंश में द्वि-वचन नहीं होता अतः 'सुप्' के स्थान पर 'हुँ' आदेश हुआ है ।

ङसि-भ्यस् ङीनां हे-हुं-हयः ॥ ३४१ ॥

अपभ्रंशे इदुद्भ्यां परेषां ङसि, भ्यस, ङि इत्येतेषां यथा संख्यं हे, हुं, हि इत्येते त्रय आदेशा भवन्ति ॥ ङसे र्हे ।

(अपभ्रंश में इकार उकार से परे पञ्चमी के एकवचन में 'हे' बहुवचन में 'हुँ' और सप्तमी के एकवचन में 'हि' का क्रम से आदेश होता है ।) यथा—पञ्चमी के एकवचन का उदाहरण—

गिरिहें सिलायलु तरुहें फलु घेप्पइ नीसावँन्नु ।
घरु मेलेप्पिणु माणुसहं तो वि न रूच्चइ रन्नु ॥
[गिरेः शिलातलं तरोः फलं गृह्यते निःसामान्यम् ।
गृहं मुक्त्वा मनुष्याणां तथापि न रोचते अरण्यम् ॥ १ ॥]

(पर्वत से शिला और वृक्ष से फल निःसामान्य रूप से (विना किसी भेद-भाव के) ग्रहण किए जाते हैं, फिर भी मनुष्यों को घर को छोड़ कर अरण्य नहीं अच्छा लगता ।)

यहाँ पर 'गिरिहें' और 'तरुहें' पञ्चमी के एकवचन के रूप हैं ।

भ्यसो हुँ । (पञ्चमी के बहुवचन में 'हुँ' आदेश होता है ।) यथा—

तरुहुँ वि वक्कलु फलु मुणिवि परिहणु असणु लहन्ति ।
सामिहुँ एत्तिउ अग्गलउं आयरु भिच्चु गृहन्ति ॥ २ ॥
[तरुभ्य अपि वल्कलं फलं मुनयः अपि परिधानं अशनं लभन्ते ।
स्वामिभ्यः इयत् अधिकं (अग्गलु) आदरं भृत्याः गृह्णन्ति ॥२॥]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(मुनि लोग भी तरुओं से भी परिधान और अशन रूपसे वल्कल और फल प्राप्त कर लेते हैं। (परंतु) (अच्छे) स्वामियों से भृत्य (वस्त्र भोजन के साथ-साथ) आदर भी ग्रहण करता है, जो उनसे अधिक है।)

यहाँ 'तरुहुँ' और 'सामिहुं' पञ्चमी के बहुवचन के रूप हैं।

ङे हिं। (सप्तमी एकवचन विभक्ति को 'हिं' का आदेश होता है।) यथा—

अह विरल-पहाउ जि कलिहि धम्मु।
[अथ विरलप्रभावः एव कलौ धर्मः]
(कलियुग में धर्म का प्रभाव बहुत कम हो गया है।
यहाँ 'कलिहिं' सप्तमी के एकवचन का रूप है।

आट्टो णानुस्वारौ ॥ ३४२ ॥

अपभ्रंशे अकारात् परस्य टा वचनस्य णानुस्वारावादेशौ भवतः। (अपभ्रंश में तृतीया के एकवचन (टा विभक्ति) को 'ण' और अनुस्वार आदेश होते हैं।) यथा—

दइएं पवसन्तेण [३३३।१] (प्रवास करते हुए प्रिय के द्वारा) यहाँ पर 'दइएं' में टा को अनुस्वार हो गया है और 'पवसन्तेण' में 'टा' को 'ण' आदेश हो गया है।

एँ चेदुतः ॥ ३४३ ॥

अपभ्रंशे इकारोकाराभ्यां परस्य टा वचनस्य 'एँ' चकारात् णानुस्वारौ च भवन्ति। एँ। (अपभ्रंश में इकार उकार से परे जो तृतीया एकवचन टा विभक्ति उसको 'एँ' आदेश होता है। सूत्र में 'च' ग्रहण के सामर्थ्य से 'ण' और अनुस्वार भी वहाँ होते हैं। यथा 'एँ' का उदाहरण—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अग्गिएँ उण्हउ होइ जगु वाएँ सीअलु तेवँ ।
जो पुणु अग्गिं सीअला तसु उण्हत्तणु केवँ ॥ १ ॥
[अग्निना उष्णं भवति जगत् वातेन शीतलं तथा ।
यः पुनः अग्निना शीतलः तस्य उष्णत्वं कथम् ॥ १ ॥]

(आग से संसार उष्ण होता है और उसी प्रकार वायु से शीतल होता है, परन्तु जो आग से शीतल होता है उसे उष्णता कैसे आ सकती है ? अर्थात् वह गर्म नहीं हो सकता ।)

यहाँ 'अग्गिएँ' और 'वाएँ' क्रमशः इकार और उकार से परे तृतीया के एक वचन के रूप हैं। यहाँ 'एँ' हो गया है। णानुस्वारौ। आगे 'ण' और अनुस्वार का उदाहरण है—

विप्पिअ-आरउ जइवि पिउ तो वि तं आणहि अज्जु ।
अग्गिण दड्ढा जइ वि घरु तो तें अग्गिं कज्जु ॥ २ ॥
[विप्रियकारकः यद्यपि प्रियः तदपि तं आनय अद्य ।
अग्निना दग्धं यद्यपि गृहं तदपि तेन अग्निना कार्यम् ॥ २ ॥]

प्रिय यद्यपि अप्रिय कारक है फिर भी आज उसे ला, (क्योंकि) आग से यद्यपि घर जल जाता है फिर भी उसे काम में लाया जाता है ।

यहाँ पर इकार से परे 'अग्गिण' में 'ण' और 'अग्गि' में अनुस्वार, तृतीया के एक वचन में हो गए हैं । एवमुकारादप्युदाहार्याः ।

इसी प्रकार उ कार से भी परे तृतीया एकवचन में 'ण' और अनुस्वार का उदाहरण ढूँढ़ना चाहिए ।

स्यम्-जस्-शसां लुक् ॥ ३४४ ॥

अपभ्रंशे सि, अम्, जस् , शस्, इत्येतेषां लोपो भवति । (अपभ्रंश में प्रथमा और द्वितीया के एकवचन तथा बहुवचन की विभक्ति का प्रायः लोप हो जाता है ।) यथा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एइ ति घोडा एह थलि। [३३०।४] अत्र स्यम् जसां लोपः। [एते ते अश्वाः एषा स्थली] इत्यादि [३३०।४] (यहाँ पर 'एइ' 'घोडा' में जस् का (प्रथमा के बहुवचन की विभक्ति का) और एह 'थलि' में प्रथमा के एकवचन की विभक्ति 'सि' का लोप है। उसी दोहे में 'वग्ग' अम् विभक्ति के लोप का उदाहरण है।

आगे 'सि' 'अम्' और 'शस्' अर्थात् प्रथमा के एकवचन तथा द्वितीया के एकवचन और बहुवचन की विभक्ति के लोप का उदाहरण दिया जाता है—

जिवँ जिवँ वंकिम लोअणहं णिरु सामलि सिक्खेइ।
तिवँ तिवँ वम्महु निअय-सर खर-पत्थरि तिक्खेइ ॥१॥

[यथा यथा वक्रिमाणं लोचनयोः नितरां श्यामला शिक्षते।
तथा तथा मन्मथः निजकशरान् खरप्रस्तरे तीक्ष्णयति ॥१॥]

(साँवरिया जैसे जैसे अपने नयनों में बाँकापन लाना सीखती है उसी प्रकार कामदेव अपने वाणों को खुरदुरे पत्थर पर तीक्ष्ण करता है।) अत्र स्यम्शसां लोपः। यहाँ 'स' 'अम्' और 'शस्' विभक्तियों का लोप है।

यहाँ 'सामलि' प्रथमा एकवचन 'सि' विभक्ति के लोप का, 'वंकिम' द्वितीया के 'अम्' विभक्ति तथा 'निअयसर' द्वितीया केबहुवचन 'शस्' के लोप के उदाहरण हैं।

षष्ठ्याः ॥३४५॥

अपभ्रंशेषष्ठ्या विभक्त्याः प्रायो लुग् भवति। (अपभ्रंश में षष्ठी विभक्ति का प्रायः लोप हो जाता है। यथा—

संगर-सएँहिँ जु वण्णिअइ देक्खु अम्हारा कन्तु।
अइमत्तहं चत्तंकुसहं गय कुम्भइं दारन्तु ॥ १ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[संगरशतेषु यो वर्ण्यते पश्य अस्माकं कान्तम् ;
अतिमत्तानां त्यक्ताङ्कुशानां गजानां कुम्भान् दारयन्तम् ॥ १ ॥]

(सैकड़ों युद्धों में जिसकी प्रशंसा की जाती है, ऐसे उस अत्यंत मत्त तथा अंकुश की कुछ भी परवा नहीं करने वाले गजों के कुम्भस्थलों को विदारने वाले मेरे कंत को तो देखो ।)

यहाँ पर 'गय' में षष्ठी के बहुवचन विभक्ति का लोप हो गया है ।

पृथग्योगो लक्ष्यानुसारार्थः । (सूत्र संख्या ३४४ से ३४५ को पृथक् इलिसए रखा गया है कि लक्ष्य के अनुसार अर्थ किया जायगा ।)

आमन्त्र्ये जसो होः ॥ ३४६ ॥

अपभ्रंशे आमन्त्र्येऽर्थे वर्तमानान्नाम्नः परस्य जसो हो इत्यादेशो भवति । लोपापवादः । (अपभ्रंश में संबोधन अर्थ में वर्तमान जो संज्ञा शब्द उससे परे जस् (प्रथमा के बहुवचन की विभक्ति) को 'हो' आदेश होता है । यह आदेश लोप का अपवाद है ।

उदाहरण—तरुणहो तरुणिहो मुणिउ मइँ करहु म अप्पहों घाउ ।
[हे तरुणाः, हे तरुण्यः, (च) ज्ञातं मया आत्मनः घातं मा कुरुत]
हे तरुणो और हे तरुणियो, मैंने समझ लिया, अपनी हत्या मत करो ।

यहाँ पर 'तरुणहो' और 'तरुणिहो' में संबोधन प्रथमा बहुवचन जस् विभक्ति को 'हो' आदेश हो गया है ।

भिस्सुपोर्हिं ॥ ३४७ ॥

अपभ्रंशे भिस्सुपोः स्थाने हिं इत्यादेशो भवति । (अपभ्रंश में भिस् और सुप् अर्थात् तृतीया और सप्तमी के बहुवचन की विभक्ति के स्थान पर 'हिं' आदेश होता है । यथा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुणहिं न संपइ कित्ति पर [३३५।१] (गुणों से संपत्ति नहीं कीर्ति होती है।) यहाँ 'गुणहिं' तृतीया बहुवचन भिस् को 'हिं' आदेश है। सुप् । सुप् के स्थान में 'हिं' आदेश का उदाहरण—

भाईरहि जिवँ भारइ मग्गेँहिँ तिहिँ वि पयट्टइ ॥ १ ॥
[भागीरथी यथा भारते त्रिषु मार्गेषु प्रवर्तते ।]

(जिस प्रकार से भागीरथी भारत के तीनों मार्गों में प्रवर्तित है।) यहाँ पर 'मग्गेँहिं' और 'तिहिं' सप्तमी बहुवचन 'सुप्' के स्थान पर हिं आदेश के उदाहरण हैं।

स्त्रियां जस्-शसोरुदोत् ॥ ३४८ ॥

अपभ्रंशे स्त्रिया वर्तमानान्नाम्नः परस्य जसः शसश्च प्रत्येक-मुदोतावादेशौ भवतः। लोपापवादौ। (अपभ्रंश में स्त्रीलिंग में स्थित जो संज्ञा शब्द, उससे परे प्रथमा और द्वितीया के बहुवचन की विभक्ति को 'उ' और 'ओ' का आदेश होता है। ये आदेश लोप के अपवाद स्वरूप हैं। उदाहरण, जसः—प्रथमा बहुवचन का—

अंगुलिउ जज्जरिआउ नहेण ॥ [३३३। १]

द्वितीया के बहुवचन में—शस् विभक्ति का उदाहरण—
सुन्दर—सव्वङ्गाउ विलासिणीओ पेच्छन्ताण ॥ १ ॥

(सुन्दरसर्वाङ्गीः विलासिनीः प्रेक्षमाणानाम् ।) (सर्वाङ्ग सुन्दरी विलासिनियों को देखने वालों का।)

यहाँ 'सुन्दर सव्वङ्गाउ' और विलासिणीओ' ये दोनों रूप द्वितीया के बहुवचन के हैं। यहाँ 'उ' और 'ओ' का आदेश है।

वचनभेदान्न यथासंख्यम् ॥ वचनभेद से यहाँ क्रमशः 'उ' और 'ओ' का आदेश नहीं होगा।)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

टए ॥ ३४६ ॥

अपभ्रंशे स्त्रियां वर्तमानान्नाम्नः परस्याष्टायाः स्थाने ए इत्यादेशो भवति। (अपभ्रंश में स्त्रीलिंग में स्थिति संज्ञा शब्दों से परे 'टा' अर्थात् तृतीया एकवचन के स्थान पर 'ए' आदेश होता है। यथा—

निअ-मुह-करहिँ वि मुद्ध कर अन्धारइ पडिपेक्खइ।
ससि-मण्डल-चन्दिमएँ पुणु काइँ न दूरे देक्खइ ॥ १ ॥

[निजमुखकरैः अपि मुग्धा करं अन्धकारे प्रतिपेत्तते।
शशिमण्डल चन्द्रिकया पुनः किं न दूरे पश्यति ॥ १ ॥]

(यह मुग्धा अपने मुखचन्द्र की किरणों से अन्धकार में अपना हाथ देख लेती है तो फिर चन्द्रमण्डल की चाँदनी से दूर तक के पदार्थों को क्यों न देख लेगी ?)

यहाँ 'चन्दिमएँ' तृतीया एकवचन का रूप है 'टा' के स्थान में 'ए' आदेश हो गया है। इसी तरह से—

जहिँ मरगय-कन्तिएँ संवलिअं ॥ २ ॥

(यत्र मरकत कान्त्या संविलम्र ॥ २ ॥ (जहाँ मरकत मणि की कान्ति से संवलित है।)

यहाँ पर मरगय कन्तिएँ तृतीया एकवचन 'टा' के स्थान पर 'ए' आदेश का दाहरण है।

ङस्-ङस्यो हें ॥३५०॥

अपभ्रंशे स्त्रियां वर्तमानान्नाम्नः परयोर्ङस् ङसि इत्येतयोर्हे इत्यादेशो भवति। ङसः। अपभ्रंश में स्त्रीलिंग में स्थित संज्ञा शब्दों से परे 'ङस्' और 'ङसि' अर्थात् पञ्चमी और षष्ठी के एक वचन में 'हे' आदेश होता है।) षष्ठी के एक वचन का उदाहरण—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तुच्छ-मज्झहे तुच्छ-जम्पिरहे ।
तुच्छच्छ-रोमावलिहे तुच्छ-राय तुच्छयर-हासहे ।
पिय-वयणु अलहन्ति अहे तुच्छकाय-वम्मह-निवासहे ।
अन्नु जु तुच्छउँ तहेँ धणहे तं अक्खणह न जाइ ।
कटरि थणंतरु मुद्धडहे जें मणु विच्चि ण माइ ॥ १ ॥
[तुच्छमध्यायाः तुच्छजल्पनशीलायाः ।
तुच्छाच्छ-रोमावल्याः तुच्छरागायाः तुच्छतरहासायाः ।
प्रियवचनमलभमानायाः तुच्छकायमन्मथनिवासायाः ।
अन्यद् यत्तुच्छं तस्याः धन्यायाः तदाख्यातुं न याति ।
आश्चर्यं स्तनान्तरं मुग्धायाः येन मनो वर्त्मनि न माति ॥१॥

(धन्या का सब कुछ सूक्ष्म है । उसका मध्यभाग सूक्ष्म है । (कटि पतली है) उसकी वाणी तुच्छ, (मधुर, धीरे-धीरे बोली जाने वाली) है । सुन्दर और तुच्छ (पतली) रोमावली है । सूक्ष्म रागवाली है । उसका हास्य भी सुमधुर और धीरे धीरे होता है । प्रियतम का कोई समाचार न पाकर पतली शरीर वाली है । उसके शरीर में कामदेव निवास करता है । उस धन्या का अन्य भी जो कुछ तुच्छ (सूक्ष्म) है, उसका वर्णन नहीं किया जाता । आश्चर्य है कि उस मुग्धा के स्तनों के बीच का भाग इतना सूक्ष्म है कि उस मार्ग पर मन भी नहीं चल पाता, वहाँ मन भी नहीं पहुँचता है ।

यहाँ सभी 'हे' अन्तवाले रूप षष्ठी के एकवचन के हैं । ङसेः । पञ्चमी के एकवचन में 'हे' आदेश का उदाहरण—

फोडेन्ति जें हियडउँ अप्पणउँ ताहँ पराई कवण घृण ।
रक्खेज्जहु लोअहो अप्पणा वालहे जाया विसम थण ॥२॥
[स्फोटयतः यौ हृदयं आत्मीयं तयोः परकीया (परविषये) का घृणा।
रक्षत लोकाः आत्मानं बालायाः, जातौ विषमौ स्तनौ ॥]
(जो अपने हृदय को फोड़ते हैं उन्हें अन्य के विषय में क्या दया ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे लोगो, उस बाला से अपनी रक्षा करो, उसके स्तन बड़े विषम-विकट हो गए हैं।)

यहाँ पर 'बालहे' पञ्चमी एकवचन का रूप है। 'ङसि' के स्थान में 'हे' आदेश हो गया है।

भ्यसामो र्हुः ॥ ३५१ ॥

अपभ्रंशे स्त्रियां वर्तमानान्नाम्नः परस्य भ्यस आमश्च हु इत्यादेशो भवति। (अपभ्रंश में स्त्रीलिंग में नाम से परे जो पञ्चमी और षष्ठी बहुवचन की विभक्ति, उसके स्थान पर 'हु' आदेश होता है।) यथा—

भल्ला हुआ जु मारिआ बहिणि महारा कन्तु।
लज्जेज्जन्तु वयंसिअहु जइ भग्गा घरु एन्तु ॥ १ ॥
[भव्यं (भद्रं) भूतं यन्मारितः भगिनि अस्मदीयः कान्तः।
अलज्जिष्यत् वयस्याभ्यः यदि भग्नः गृहं ऐष्यत् ॥१॥]

(हे बहिनि, भला हुआ जो मेरा कंत मारा गया, यदि भाग कर घर आता तो वयस्याओं से मैं लजाई जाती या वह सखियों के बीच लजाया जाता।)

यहाँ 'वयंसिअहु' पञ्चमी के बहुवचन में 'हु' आदेश का उदाहरण है। 'वयंसिअहु' षष्ठी के बहुवचन में भी होगा। अतः यह एक ही उदाहरण पञ्चमी और षष्ठी दोनों के बहुवचन का उदाहरण है।

वयस्याभ्यो वयस्यानां वेत्यर्थः। (वयस्याओं से, वयस्याओं के।)

ङेर्हि ॥ ३५२ ॥

अपभ्रंशे स्त्रियां वर्तमानान्नाम्नः परस्य ङेः सप्तम्येक वचनस्य हि इत्यादेशो भवति। अपभ्रंश में स्त्रीलिंग में शब्दों से परे जो सप्तमी के एकवचन की 'ङि' विभक्ति उसको 'हि' आदेश होता है।) यथा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वायसु उड्डावन्तिअए पिउ दिट्ठउ सहस त्ति ।
अद्धा वलया महिहि गय अद्धा फुट्ट तड त्ति ॥१॥
[वायसं उड्डापयन्त्याः प्रियो दृष्टः सहसेति ।
अर्धानि वलयानि मह्यां गतानि अर्धानि स्फुटितानि तटिति ॥]

(कौए को उड़ाती हुई विरहिणी ने सहसा प्रिय को देखा । (इतने में) उसकी आधी चूड़ियाँ (विरह कृशता के कारण ढीली होने से) पृथ्वी पर गिर गईं और आधी (प्रिय को देखने से जो हर्ष हुआ उसके कारण कृशता जाती रही और ढीली चूड़ियाँ भी) कड़ी होकर तड़तड़ करके टूट गईं ।)

यहाँ पर 'महिहि' सप्तमी एकवचन का रूप है । 'हि' का आदेश हुआ है ।

क्लीबे जस्-शसोरिं ॥ ३५३ ॥

अपभ्रंशे क्लीवे वर्तमानान्नाम्नः परयोर्जस्शसोः इं इत्यादेशो भवति ।

(अपभ्रंश में नपुंसक लिंग में वर्तमान जो संज्ञा शब्द, उससे परे जस् और शस् अर्थात् प्रथमा और द्वितीया के बहुवचन की विभक्तियाँ उनके स्थान पर 'इं' आदेश होता है ।) यथा—

कमलइँ मेल्लवि अलि-उलइं करि-गण्डाइं महन्ति ।
असुलह मेच्छण जाहँ भलि ते ण-वि दूर गणन्ति ॥ १ ॥

[कमलानि मुक्त्वा अलिकुलानि करिगण्डान् कांचन्ति ।
असुलभं एष्टुं येषां निर्बन्धः (भलि) ते नापि (=नैव)-दूरं गणयन्ति ॥]

(कमलों को छोड़कर अलिकुल (भ्रमर समूह) हाथियों के गण्डस्थल की आकांक्षा रखते हैं (वहाँ जाते हैं), दुर्लभ को प्राप्त करने की जिनकी इच्छा रहती है, वे दूरी को कुछ भी नहीं समझते ।)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यहाँ पर 'कमलइँ' और 'करिगण्डाइँ' द्वितीया के बहुवचन के रूप हैं तथा 'अलिउलइं' प्रथमा के बहुवचन का रूप है।

कान्तस्यात उं स्यामोः ॥ ३५४ ॥

अपभ्रंशे क्लीवे वर्तमानस्य ककारान्तस्य नाम्नो योकारस्तस्य स्यमोः परयोः उं इत्यादेशो भवति ॥ (अपभ्रंश में नपुंसक लिंग में वर्तमान जो उकारान्त संज्ञा शब्द उसके अकार को 'सि' और 'अम्' अर्थात् प्रथमा और द्वितीया के एक वचन परे रहते 'उं' आदेश होता है।)

यथा—अन्नु जु तुच्छउँ तहे॑ धणहे ॥ (३५०।१)

(यहाँ 'तुच्छउँ प्रथमा के एकवचन का रूप है।

यथा— भग्गउँ देक्खिवि निअय-वलु बलु पसरिअउँ परस्सु ।
उम्मिल्लइ ससि-रेह जिवँ करि करवालु पियस्सु ॥ १ ॥

[भग्नकं दृष्ट्वा निजकं वलं बलं प्रसृतकं परस्य ।
उन्मीलति शशिलेखा यथा करे करवालः प्रियस्य ॥ १ ॥]

(अपने वल (सेना) को भागते हुए तथा शत्रु के वल (सेना) को फैलते हुए देख कर प्रिय के हाथों में करवाल चन्द्रकला की तरह चमचमाने लगती है।)

यहाँ 'भग्गउँ' 'वलु' पसरिअउँ' द्वितीया के एकवचन के रूप हैं

सर्वादेर्ङसेर्हां ॥ ३५५ ॥

अपभ्रंशे सर्वादेरकारान्तात्परस्य ङसेर्हां इत्यादेशो भवति। (अपभ्रंश में अकारान्त सर्वनामों से परे ङसि अर्थात् पञ्चमी के एकवचन की विभक्ति को 'हां' आदेश होता है।) यथा—

जहां होन्तउ आगदो। [यस्मात् भवान् अगतः]) जहाँ से आप आये हैं। यहाँ 'यत्' सर्वनाम के पञ्चमी एकवचन में 'जहां' रूप बना है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तहां होन्तउ आगदो। [तस्मात् भवान् आगतः] (वहाँ से आप आये हैं)। यहाँ 'तहां' तत् शब्द के पञ्चमी एकवचन का रूप है।

कहां होन्तउ आगदो। [कस्मात् भवान् आगतः] (कहाँ से आप आए है) यहाँ 'कहां' किम् शब्द के पञ्चमी एक वचन का रूप है। सर्वत्र 'हां' आदेश हो गया है।

किमो डिहे वा ॥ ३५६ ॥

अपभ्रंशे किमोकारान्तात्परस्य ङसेर्डिहे इत्यादेशो वा भवति। (अपभ्रंश में किम् शब्द को पञ्चमी के एकवचन में 'डिहे' विकल्प से आदेश होता है।) यथा—

जइ तहे तुट्टउ नेहडा मइँ सहुँ न वि तिलतार।
तं किहे वङ्केहिँ लोअणेहिं जोइज्जउँ सयवार ॥ १ ॥

[यदि तस्याः त्रुट्यतु स्नेहः मया सह नापि तिलतारः ॥ १ ॥
तत् कस्माद् वक्राभ्यां लोचनाभ्यां दृश्ये (अहं) शतवारम् ॥ १ ॥]

(यदि उसका स्नेह टूट गया मेरे साथ उसकी दृष्टि नहीं मिलती तो फिर सैकड़ों बार उन वक्रलोचनों द्वारा मैं क्यों ढूँढ़ा जाता हूँ।)

यहाँ 'किहे' पञ्चमी के एकवचन का रूप है।

ङेर्हिं ॥ ३५७ ॥

अपभ्रंशे सर्वादेरकारान्तात्परस्य ङेः सप्तम्येकवचनस्य 'हिं' इत्यादेशो भवति ॥ (अपभ्रंश में अकारान्त सर्वनाम से परे जो सप्तमी एकवचन की 'ङि' विभक्ति उसको 'हिं' आदेश होता है।)

यथा—जहिँ कप्पिज्जइ सरिण सरु छिज्जइ खग्गिण खग्गु।
तहिँ तेहइ भडघड-निवहि कन्तु पयासइ मग्गु ॥

[यत्र (या यस्मिन्) कल्प्यते शरेण शरः छिद्यते खड्गेन खड्गः।
तस्मिन् तादृशे भटघटानिवहे कान्तः प्रकाशयति मार्गम् ॥]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(जहाँ वाण से वाण काटा जा रहा है, खड्ग से खड्ग का छेदन किया जा रहा है, वहाँ उस प्रकार के भटों की घटा (समूह में) मेरा प्रिय मार्ग को प्रकाशित करता है।)

यहाँ 'जहिं' और 'तहिं' सप्तमी एकवचन के रूप हैं।

एक्कहिं अक्खिहिं सावणु अन्नहिं भद्दवउ।
माहउ महिअल-सत्थरि गण्डत्थले सरउ।
अङ्गिहिं गिम्ह सुहच्छी–तिल–वणि मग्गसिरु।
तहें मुद्धहें मुह–पङ्कइ आवासिउ सिसिरु ॥ २ ॥

[एकस्मिन् अक्षिणि श्रावणः अन्यस्मिन् भाद्रपदः
माधवः (या माघः) महीतलस्रस्तरे गण्डस्थले शरत्।
अङ्गेषु ग्रीष्मः सुखासिकातिलवने मार्गशीर्षः
तस्याः मुग्धायाः मुखपङ्कजे आवासितः शिशिरः ॥२॥]

(उस मुग्धा की एक आँख में श्रावण, दूसरी आँख में भाद्रपद है। पृथ्वी तल पर स्थित उसके विस्तरे पर माधव या माघ मास है; गण्ड-स्थल पर शरत् है, अङ्गों में ग्रीष्म है, सुखपूर्वक बैठने के तिलवन में मार्गशीर्ष है और मुखपङ्कज में शिशिर ने आवास किया है। तात्पर्य यह कि उसकी आँखों से निरन्तर आँसू गिरते हैं। उसका विस्तर माधव-वसंत के समान पल्लव कल्पित हैं या माघ की रात के समान ठण्ढा है। उसके कपोल पीले पड़ गए हैं। उसका शरीर जल रहा है—जैसे मार्ग शीर्ष में तिलवन का उच्छेद किया जाता है - वह रहता नहीं, उसी प्रकार वह सुखपूर्वक नहीं बैठ सकती, शिशिर के कमल के समान उसका मुख हतश्री है।)

यहाँ पर 'एक्कहिं' 'अन्नहिं' सप्तमी के एकवचन के रूप हैं। इसी प्रकार—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हिअडा फुट्टि तड त्ति करि कालखेवें काइं ।
देक्खउँ हय-विहि कहिँ ठवइ पइँ विणु दुक्ख-सयाइं ॥३॥

[हृदय स्फुट तटिति (शब्दं) कृत्वा कालक्षेपेण किम् ।
पश्यामि हतविधिः क्व स्थापयति त्वया विना दुःखशतानि ॥३॥]

(हे हृदय, तड़-तड़ करके फट जा, कालक्षेप (व्यर्थ के समय बिताने) से क्या (फायदा)? देखें कि वह मेरा दुर्भाग्य तेरे बिना सैकड़ों दुःखों को कहाँ रखता है ।)

यहाँ पर 'कहिँ' किम् शब्द का सप्तमी एक वचन का रूप है ।

यत्तत्किंभ्यो ङसो डासुर्नवा ॥ ३५८ ॥

अपभ्रंशे यत्तत्किम् इत्येतेभ्योकारान्तेभ्यः परस्य ङसो डासु इत्यादेशो वा भवति । (अपभ्रंश में अकारांत यत्, तत्, किम्, से परे जो ङस् अर्थात् षष्ठी की एकवचन विभक्ति उसे डासु विकल्प से आदेश होता है ।) यथा –

कन्तु महारउ हलि सहिए निच्छइँ रूसइ जासु ।
अत्थिहिं सत्थिहिं हत्थिहिँ वि ठाउ वि फेडइ तासु ॥ १ ॥

[कान्तः अस्मदीयः हला सखिके निश्चयेन रुष्यति यस्य (=यस्मै)
अस्त्रैः शस्त्रैः हस्तैरपि स्थानमपि स्फोटयति तस्य ॥ १ ॥]

(हला सखि, मेरे कान्त जिसको (जिससें) निश्चय रूप में रुष्ट हो जाते हैं; अस्त्र, शस्त्र और हाथों के द्वारा भी उसके घर तक को नष्ट कर डालते हैं । यहाँ 'जासु' और 'तासु' यत् और तत् शब्द की षष्ठी के एक वचन के रूप हैं ।

इसी प्रकार—

जीविउ कासु न वल्लहउँ धणु पुणु कासु न इट्ठु ।
दोण्णि वि अवसर निवडिअइं तिण सम गणइ विसिट्ठु ॥२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[जीवितं कस्य न वल्लभकं धनं पुनः कस्य नेष्टम् ।
द्वे अपि अवसर निपतिते तृण-समे गणयति विशिष्टः ॥२॥]

(जीवन किसे प्रिय नहीं है ? और धन किसे इष्ट नहीं है ? पर समय आ पड़ने पर विशिष्ट व्यक्ति इन दोनों को तृण के समान समझता है। उसकी गणना में ये तृण के समाम व्यर्थ हो जाते हैं।)

यहाँ पर 'कासु' किम् शब्द की षष्ठी के एक वचन का रूप है।

स्त्रियां डहे ॥ ३५९ ॥

अपभ्रंशे स्त्रीलिंगे वर्तमानेभ्यो यत्तत्किंभ्यः परस्य ङसो डहे इत्यादेशो वा भवति। (अपभ्रंश में स्त्रीलिंग में वर्तमान यत्, तत् और किम् शब्द से पर ङस् अर्थात् षष्ठी की एक वचन विभक्ति उसे विकल्प से डहे आदेश होता है।) यथा—जहे केरउ। [यस्याः कृते] (जिसके लिए) तहे केरउ [तस्याः कृते] (उसके लिए) कहे केरउ। [कस्याः कृते] (किसके लिए)

यहाँ जहे, तहे और कहे, यत्, तत् और किम् शब्द की षष्ठी एक वचन स्त्रीलिंग के रूप हैं।

यत्तदः स्यमोर्ध्रुं त्रं ॥ ३६० ॥

अपभ्रंशे यत्तदोः स्थाने स्यमोः परयोर्यथा संख्यं ध्रुं त्रं इत्यादौ वा भवतः ॥ अपभ्रंश में यत् और तत् शब्द को प्रथमा और द्वितीया के एक वचन में क्रमशः 'ध्रुं' और 'त्रं' आदेश होते हैं। यथा—

प्रङ्गणि चिट्ठदि नाहु ध्रुं त्रं रणि करदि न भ्रन्ति ॥ १ ॥
[प्राङ्गणे तिष्ठति नाथः यत् तद् रणे करोति न भ्रान्तिम् ॥१]

(मेरे नाथ जो प्राङ्गण में खड़े हैं सो [अतः] रणक्षेत्र में नहीं हैं। यह भ्रांति है। वे रण में लड़ते भी हैं। यहाँ 'ध्रु' यत् शब्द के प्रथमा एक वचन का रूप है और 'त्रं' तत् शब्द के प्रथमा एक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वचन का। जहाँ 'ध्रु'; 'त्रं' का आदेश नहीं होगा उसका उदाहरण—तं बोल्लिअइ जु निव्वहइ। [तत् जल्पते यन्निर्वहति] (वही कहते हैं जो निवहता-निभता है।)

यहाँ पर 'तं' और 'जु' के स्थान पर 'ध्रु' 'त्रं' आदेश नहीं हुआ है। 'तत्' और 'यत्' शब्द के प्रथमा द्वितीया के एकवचन के रूप हैं।

इदम इमुः क्लीबे ॥ ३६१ ॥

अपभ्रंशे नपुंसकेलिङ्गे वर्तमानस्येदमः स्यमोः परयोः इमु इत्यादेशो भवति॥ (अपभ्रंश में नपुंसक लिंग में स्थित जो इदम् शब्द उसके स्थान में प्रथमा और द्वितीया की एकवचन विभक्ति परे रहे तो इमु आदेश होता है।) यथा—इमु कुलु तुह तणउं। इमु कुलु देक्खु॥ [इदं कुलं तव तनय] (यह कुल तुम्हारा है तनय!), [इदं कुलं पश्य] (यह कुल देखो) यहाँ पर प्रथम इमु इदम् शब्द के प्रथमा एकवचन और द्वितीय इमु द्वितीया एकवचन का रूप है।

एतदः स्त्री-पुं क्लीबे एह एहो एहु। ३६२ ॥

अपभ्रंशे स्त्रियां पुंसि नपुंसके वर्तमानस्यैतदः स्थाने स्यमोः परयोर्यथासंख्यम् एह, एहो, एहु इत्यादेशा भवन्ति॥ (अपभ्रंश में एतत् शब्द के स्थान में स्त्रीलिंग पुंलिंग और नपुंसक लिंग में प्रथमा और द्वितीया के एकवचन में क्रमशः एह, एहो और एहु आदेश होता है। अर्थात् स्त्रीलिंग में एह, पुंलिंग में एहो और नपुंसक लिंग में एहु आदेश होता है।) यथा—

एह कुमारी एहो नरु एहु मणोरह ठाणु।
एहउँ वढ चिन्तन्ताहं पच्छइ होइ विहाणु॥ १॥
[एषा कुमारी एष (अहं) नरः एतन्मनोरथस्थानम्।
एतत् मूर्खाणां चिन्तमानानां पश्चाद् भवति विभातम्॥१॥]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(यह कुमारी है, यह (मैं) पुरुष हूँ, यह मनोरथ स्थान है, मूर्खों को यही सोचते-सोचते सवेरा हो जाता है।)

यहाँ 'एह', एहो और एहु एतत् शब्द के स्त्रीलिंग, पुंलिंग और नपुंसक लिंग के प्रथमा एकवचन के रूप हैं।

एइर्जस्शसोः ॥ ३६३ ॥

अपभ्रंशे एतदो जस्-शसोः परयोः एइ इत्यादेशो भवति ॥ (अपभ्रंश में प्रथमा द्वितीया के बहुवचन में एतत् शब्द को एइ आदेश हो जाता है।) यथा—एइ ति घोडा एह थलि [३३०।४] यहाँ 'एइ' एतत् शब्द के पुंलिंग में प्रथमा बहुवचन का रूप है। ऐसे ही एइ पेच्छ। [एतानि प्रेक्षस्व] (इन्हें देखो) यहाँ 'एइ' एतत् शब्द का द्वितीया के बहुवचन का रूप है।

अदस ओइ ॥ ३६४ ॥

अपभ्रंशे अदशः स्थाने जस् शसोः परयोः ओइ इत्यादेशो भवति ॥ (अपभ्रंश में प्रथमा और द्वितीया के बहुवचन में अदस् शब्द को 'ओइ' आदेश होता है।) यथा—

जइ पुच्छह घर वड्डाइं तो वड्डा घर ओइ।
विहलिअ-जण-अब्भुद्धरणु कन्तु कुडीरइ जोइ ॥१॥

[यदि पृच्छथ महान्ति (वड्डाइं) गृहाणि तद् महान्ति गृहाणि अमूनि।
विह्वलितजनाभ्युद्धरणं कान्तं कुटीरके पश्य ॥१॥]

यदि तुम बड़े घर पूछ रहे हो तो बड़े घर वे रहे, [परंतु] विह्वलित (कष्ट में पड़े) लोगों को उद्धार करने वाले मेरे कान्त को (उस) कुटी में देखो)। यहाँ पर 'ओइ' 'अदस्' शब्द के प्रथमा बहुवचन का रूप है। (बड़ा घर वही है जहाँ परोपकार होता है)।

[अमूनि वर्तन्ते पृच्छ वा] वे रहे या उनसे पूछो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इदम आयः ॥ ३६५ ॥

अपभ्रंशे इदम् शब्दस्य स्यादौ आय इत्यादेशो भवति ॥

(अपभ्रंश में 'सि' आदि प्रथमा की एकवचनादि की) विभक्ति परे रहते इदम् शब्द के स्थान में 'आय' आदेश हो जाता है।) यथा—

आयइँ लोअहों लोअणइँ जाई सरइँ न भन्ति ।
अप्पिएँ दिट्ठइ मउलिअहिं पिएँ दिट्ठइ विहसन्ति ॥१॥

[इमानि लोकस्य लोचनानि जातिं स्मरन्ति न भ्रांतिः।
अप्रिये दृष्टे मुकुलन्ति प्रिये दृष्टे विकसन्ति ॥१॥]

(ये संसार के लोचन अपनी जाति को निभ्रांत रूप से स्मरण करते (जातिस्मर—पूर्व जन्म की बात याद करने वाले) हैं। अप्रिय को देख कर मुकुलित हो जाते हैं और प्रिय को देख कर प्रफुल्लित हो जाते हैं।) यहाँ 'आयइँ' इदम् शब्द के प्रथमा बहुवचन का रूप है। उसी प्रकार—

सोसउ म सोसउ च्चिअ उअहि वडवानलस्स किं तेण ।
जं जलइ जले जलणो आएण वि किंन पज्जतं ॥२॥

[शुष्यतु मा शुष्यतु एव (=वा) उदधिः वडवानलस्य किं तेन ?
यद् ज्वलति जले ज्वलनः एतेनापि किंन पर्याप्तम् ॥२॥

(समुद्र सूखे या न सूखे इससे वडवानल को क्या ? (फायदा) जल में जो आग लगती है इतने ही से [इतना ही] क्या पर्याप्त नहीं है ? यहाँ 'आएण' 'इदम्' शब्द के तृतीया के एकवचन का रूप है।

आयहों दड्ढ-कलेवर हो जं वाहिउ तं सारु ।
जइ उट्ठब्भइ तो कुहइ अह डज्झइ तो छारु ॥३॥

[अस्य दग्धकलेवरस्य यद् वाहितं (लब्धं) तत्सारम् ।
यदि आच्छाद्यते तत्कुथ्यति यदि दह्यते तत्क्षारः ॥ ३ ॥]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(इस दग्ध शरीर से जो भी मिल जाय वही सार (बहुत कुछ) है। यदि इसे ढका जाय तो दुर्गंध आने लगे; यदि जलाय जाय तो राख हो जाय।) यहाँ 'आयहो' इदम् शब्द के षष्ठी बहुवचन का रूप है।

सर्वस्य साहो वा ॥ ३६६ ॥

अपभ्रंशे सर्व शब्दस्य साह इत्यादेशो वा भवति ॥ (अपभ्रंश में सर्व शब्द को विकल्प से साह आदेश होता है। यथा—

साहु वि लोउ तडप्फडइ वड्डुत्तणहों तणेण।
वड्डप्पणु परि पाविअइ हत्थि मोक्कलडेण ॥ १ ॥
[सर्वोऽपि लोकः प्रस्पन्दते (तडप्फडइ) महत्त्वस्य कृते।
महत्त्वं पुनः प्राप्यते हस्तेन मुक्तेन ॥]

(बड़प्पन के लिए सभी लोग तड़फड़ाते हैं पर मुक्त हाथ (दान करने से) बड़प्पन मिलता है।)। यहाँ 'साहु' सर्व शब्द के प्रथमा एक वचन का रूप है।

पक्षे। सव्वु वि। जहाँ 'साहु' आदेश नहीं होगा वहाँ 'सव्वु वि' रूप होगा।

किमः काइं-कवणौ वा ॥ ३६७ ॥

अपभ्रंशे किमः स्थाने काइं कवण इत्यादेशौ वा भवतः ॥ (अपभ्रंश में किम् शब्द के स्थान पर 'काइं' और 'कवण' विकल्प से आदेश होते हैं यथा—

जइ न सु आवइ दूइ घरु काइँ अहो मुहुँ तुज्झु।
वयणु जु खण्डइ तउ सहिए सो पिउ होइ न मज्झु ॥ १ ॥
[यदि न स आयाति दूति गृहं किं अधोमुखं तव।
वचनं यः खण्डयति तव सखिके स प्रियो भवति न मम ॥१॥]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(हे दूति, यदि वह [प्रिय] घर नहीं आता तो तुम्हारा मुख क्यों लटका है। हे सखि, जो तुम्हारी बात नहीं मानता वह मेरा प्रिय नहीं है।)

यहाँ 'काइं' किं शब्द के स्थान में आदेश हुआ है। इसी प्रकार से काइं न दूरे देक्खइ [३३६।१] 'किम्' शब्द के स्थान में काइँ आदेश हुआ है।

फोडेन्ति जे हिअडउँ अप्पणउँ ताहँ पराई कवण घृण।
रक्खेज्जहु लोअहों अप्पणा वालहें जाया विसम थण ॥२॥

संस्कृतच्छाया दे० [३५०।२] यहाँ 'किम्' के स्थान में 'कवण' है।

सुपुरिस कंगुहे अणुहरहिं भण कज्जें कवणेण।
जिवँ जिवँ वडत्तणु लहहिं तिवँ तिवँ नवहिं सिरेण ॥ ३ ॥

[सुपुरुषाः कङ्गोः अनुहरन्ति भण कार्येण केन।
यथा यथा महत्त्वं लभन्ते तथा तथा नमन्ति शिरसा ॥ ३ ॥]

(भला बताओ सज्जन पुरुष किस कार्य से [क्यों] कङ्गु नामक धान का अनुसरण करते हैं ? ज्यों-ज्यों बड़प्पन प्राप्त करते हैं त्यों-त्यों शिर से झुकने लगते हैं, (नम्र होते हैं)। यहाँ भी किम् शब्द के स्थान में 'कवण' आदेश हो गया है।

विकल्प से 'काइँ' और 'कवण' आदेश होते हैं, अतः जहाँ ये आदेश नहीं होंगे वहाँ का रूप—

जइ ससणेही तो मुइअ अह जीवइ निन्नेह।
बिहिं वि पयारें हिं गइअ धण किं गज्जहि खल मेह ॥ ४ ॥

[यदि सस्नेहा तन्मृता अथ जीवति निःस्नेहा।
द्वाभ्यामपि प्रकाराभ्यां गतिका (=गता) धन्या, किं गर्जसि खल मेघ ॥४॥]

(यदि वह सस्नेही है तब तो मर गई और यदि जीती है तब तो उसमें स्नेह नहीं है (अन्यथा मर गई रहती), दोनों प्रकार से धन्या गई, ऐ खल मेघ, क्या व्यर्थ गरज रहे हो।) (किसी प्रवासी का कथन।)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यहाँ 'किम्' शब्द के स्थान में 'काइँ' और 'कवण' न आदेश होकर 'किं' ही रह गया है।

युष्मदः सौ तुहुं ॥ ३६८ ॥

अपभ्रंशे युष्मदः सौ परे तुहुं इत्यादेशो भवति ॥ (अपभ्रंश में प्रथमा की एक वचन विभक्ति परे रहे तो युष्मद शब्द को 'तुहुं' आदेश होता है।) यथा—

भमर म रुणु झुणि रण्णडइ सा दिसि जोइ म रोइ।
सा मालइ देसन्तरिअ जसु तुहुँ मरहि विओइ ॥ १ ॥

[भ्रमर मा रुणु झुणु शब्दं करु तां दिशं विलोकय मा रुदिहि।
सा मालती देशान्तरिता यस्याः त्वं म्रियसे वियोगे ॥ १ ॥]

(हे भ्रमर, अरण्य में रुन-झुन ध्वनि मत कर, उस दिशा को देख कर मत रो, वह मालती दूसरे देश में चली गई जिसके वियोग में तू मर रहे हो)। यहाँ पर 'तुहुँ' युष्मद शब्द के प्रथमा एकवचन का रूप है।

जस्-शसोस्तुम्हे तुम्हइं ॥ ३६९ ॥

अपभ्रंशे युष्मदो जसि शसि च प्रत्येकं तुम्हे तुम्हइं इत्यादेशौ भवतः। (अपभ्रंशे युष्मद शब्द को प्रथमा और द्वितीया के बहुवचन में तुम्हे और तुम्हइं आदेश होते हैं)।

तुम्हे तुम्हइं जाणह। [यूयं जानथ।] (तुम लोग जानते हो।) यहाँ युष्मद् शब्द के प्रथमा बहुवचन में 'तुम्हे' 'तुम्हइं' आदेश हो गए हैं। तुम्हे तुम्हं पेच्छइ। [युष्मान् प्रेक्षते।] तुमलोगों को देखता है। यहाँ युष्मद् शब्द को द्वितीया बहुवचन में तुम्हे, तुम्हइं आदेश हो गए हैं। वचन भेदो यथासंख्य निवृत्त्यर्थः। (वचन भेद इसलिए किया गया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है कि प्रथमा और द्वितीया के बहुवचन में क्रमशः तुम्हे और तुम्हइं आदेश न होने लगें।)

टा-ङ्यमा पइं तइं ॥ ३७० ॥

अपभ्रंशे युष्मदः टा ङि अम् इत्येतैः सह पइं तइं इत्यादेशौ भवतः। टा। (अपभ्रंश में युष्मद् शब्द से परे टा, ङि, अम् अर्थात् तृतीया, सप्तमी और द्वितीया को एकवचन की विभक्ति हो तो युष्मद् को उन विभक्तियों के साथ 'पइं' 'तइं' आदेश होते हैं।) तृतीया एकवचन में—

पइँ मुक्काहँ वि वरतरु फिट्टइ पत्तत्तणं न पत्ताणं।
तुह पुणु छाया जइ होज्ज कह वि ता तेहिं पत्तेहिं ॥ १ ॥
[त्वया मुक्तानामपि वरतरो विनश्यति (फिट्टइ) न पत्रत्वं पत्राणाम्।
तव पुनः छाया यदि भवेत् कथमपि तदा तैः पत्रैः (एव) ॥१॥]

(हे श्रेष्ठ तरु, तुम से मुक्त होकर भी इन पत्तों का पत्रत्व नहीं नष्ट होता, और तुमको यदि (किसी प्रकार) छाया होती है तो उन्हीं पत्तों से ही)। यहाँ तृतीया के एकवचन में 'पइं' आदेश हो गया है। इसी प्रकार—

मह हिअउँ तइं ताए तुहुँ स वि अन्नें विनडिज्जइ।
पिअ काइँ करउँ हउँ काइँ तुहुँ मच्छें मच्छु गिलिज्जइ ॥ २ ॥
[मम हृदयं त्वया, तया त्वं सापि अन्येन विनाट्यते।
प्रिय किं करोम्यहं किं त्वं मत्स्येन मत्स्यः गिलयते ॥ २ ॥]

(मेरा हृदय तुम्हारे द्वारा, तुम्हारा उसके द्वारा, वह भी दूसरे पुरुष के द्वारा विनष्ट की जा रही है, (तो) हे प्रिय मैं क्या करूँ और तुम क्या करोगे, एक मछली दूसरी मछली के (ही तो) द्वारा निगली जाती है।)

यहाँ युष्मद् शब्द को तृतीया के एकवचन में टा विभक्ति के साथ 'तइं' आदेश हो गया है। अत्र सप्तमी के एकवचन में भी—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पइँ मइँ बेहिँ वि रण-गयहिं को जयसिरि तक्केइ ।
केसहिँ लेप्पिणु जम-घरिणि भण सुहु को थक्केइ ॥ ३ ॥

[त्वयि मयि द्वयोरपि रणगतयोः को जयश्रियं तर्कयति ।
केशैर्गृहीत्वा यमगृहिणीं भण सुखं कस्तिष्ठति ॥ ३ ॥]

(हम दोनों के रणक्षेत्र में चले जाने पर जय श्री की तर्कना (अपने लिए) कौन कर सकता है ? अपने केशों के द्वारा यम गृहिणी को पकड़ कर बता कि कौन सुख से रह सकता है ।) यहाँ सप्तमी को एकवचन में 'पइँ' आदेश होगया है । 'पइँ' के स्थान पर 'तइँ' आदेश होगा तब 'तइँ मइँ' हो जायगा । आगे 'अम्' अर्थात् द्वितीया एक वचन में युष्मद् शब्द को 'पइँ' 'तइँ' आदेश होता है उसका उदाहरण है—

पइँ मेल्लन्तिहे महु मरणु मइँ मेल्लन्तहों तुज्झु ।
सारस जसु जो वेग्गला सो वि कृदन्तहों सज्झु ॥ ४ ॥

[त्वां मुञ्चन्त्याः मम मरण मां मुञ्चतस्तव ।
सारसः (यथा) यस्य दूरे (वेग्गळा) स कृतान्तस्य साध्यः ॥४॥]

(नायिका कह रही है कि) (तुझे छोड़ते हुए मेरा मरण हो रहा है और मुझे छोड़ते हुए तेरा; सारस के समान (हम दोनों में से) जो दूर रहेगा वह कृतान्त का साध्य है (लक्ष्य है)। अर्थात् उसकी मृत्यु हो जायगी ।)

यहाँ पइँ के स्थान पर तइँ आदेश होगा तब 'तइँ मेल्लन्तिहे' इत्यादि भी एक उदाहरण हो जायगा ।

भिसा तुम्हेहिं ॥ ३७१ ॥

अपभ्रंशे युष्मदो भिसा सह तुम्हेहिं इत्यादेशो भवति । (अपभ्रंश में युष्मद् शब्द से परे तृतीया का बहुवचन हो तो उसके साथ युष्मद् को तुम्हेहिं आदेश हो जाता है ।) यथा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तुम्हेंहिँ अम्हेंहिँ जं कियउं दिट्ठउँ बहुअ जणेण ।
तं तेवड्डउ समर-भरु निज्जिउ एक्क-खणेण ॥ १ ॥

[युस्माभिः अस्माभिः यत् कृतं दृष्टं बहुकजनेन ।
तत् (=तदा) तावन्मात्रः समरभरः निर्जितः एकचाणेन ॥१॥]

(तुमने हमने जो किया, उसे बहुत लोगों ने देखा, वह इतना बड़ा समर एक ही क्षण में निःशेषतः जीत लिया गया ।)

यहाँ युष्मद् शब्द को तृतीया बहुवचन में तुम्हेंहिँ आदेश हो गया है

ङसि ङस्भ्यां तउ तुज्झ तुध्र ॥ ३७२ ॥

अपभ्रंशे युष्मदो ङसिङस्भ्यां सह तउ तुज्झ तुध्र इत्येते त्रय आदेशा भवन्ति ॥ (अपभ्रंश में युष्मद् शब्द को पञ्चमी और षष्ठी के एक वचन में ङसि और ङस् विभक्ति के साथ तउ, तुज्झ और तुध्र ये तीन आदेश होते हैं ।) यथा—तउ होन्तउ आगदो [त्वत् भवन् आगतः] (तुम्हारे यहाँ से आया है ।) यहाँ 'तउ' आदेश है । तुज्झ होन्तउ आगदो । तुध्र होन्तउ आगदो [त्वत् आगतः] (तुम्हारे यहाँ से आया है ।) सर्वत्र पञ्चमी एकवचन है । षष्ठी एकवचन में—

तउ गुणसंपइ तुज्झ मदि तुध्र अणुत्तर खन्ति ।
जइ उप्पत्तिं अन्न जण महि-मंडलि सिक्खन्ति ॥

[तव गुणसंपदं तव मतिं तव अनुत्तरां क्षान्तिम् ।
यदि उत्पद्य अन्यजनाः महीमण्डले शिक्षन्ते ॥१॥]

(आपकी गुण संपत्ति, आपकी बुद्धि, आपकी सर्वोत्तम क्षमा, यदि दूसरे व्यक्ति इस पृथ्वी मंडल पर उत्पन्न होकर सीख लेते !।) यहाँ तउ, तुज्झ और तुध्र तीनो युष्मद् शब्द के षष्ठी एक बचन के रूप हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भ्यसाम्भ्यां तुम्हहं ॥३७३॥

अपभ्रंशे युष्मदो भ्यस् आम् इत्येताभ्यां सह तुम्हहं इत्यादेशो भवति। (अपभ्रंश में युष्मद् शब्द को भ्यस् और आम् विभक्ति के साथ अर्थात् पञ्चमी और षष्ठी के बहुवचन में 'तुम्हहं' आदेश होता है।) यथा—तुम्हहं होन्तउ आगदो। [युष्मत् भवन् आगतः] (आप लोगों के यहाँ से आया है।) तुम्हहं केरउं धणु। (युष्माकं कृते धनम्।) (तुम लोगों के लिए धन।) उपर्युक्त दोनों स्थानों पर षष्ठी बहुवचन है।

तुम्हासु सुपा ॥३७४॥

अपभ्रंशे युष्मदः सुपा सह तुम्हासु इत्यादेशो भवति॥ (अपभ्रंश में युष्मद् शब्द को सप्तमी के बहुवचन की सुप विभक्ति के साथ 'तुम्हासु' आदेश हो जाता है। यथा—तुम्हासु ठिअं। [युष्मासु स्थितम्।]। (आप लोगों पर स्थित है।)।

सावस्मदो हउं ॥ ३७५ ॥

अपभ्रंशे अस्मदः सौ परे हउं इत्यादेशो भवति (अपभ्रंश में अस्मद् शब्द से परे प्रथमा की एकवचन विभक्ति के साथ अस्मद् शब्द को 'हउं' आदेश होता है।) यथा—तसु हउं कलिजुगि दुल्लहहो [३३८।१]

जस्शसोरम्हे अम्हइं ॥ ३७६ ॥

अपभ्रंशे अस्मदो जसि शसि च परे प्रत्येकम् अम्हे अम्हइं इत्यादेशौ भवतः॥ (अपभ्रंश में अस्मद् शब्द को प्रथमा और द्वितीया के बहुवचन की विभक्तियों के साथ अम्हे, अम्हइं आदेश होते हैं।) यथा—

अम्हे थोवा रिउ बहुअ कायर एम्व भणन्ति।
मुद्धि निहालहि गयण-यलु कइ जण जोण्ह करन्ति॥ १॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[वयं स्तोकाः रिपुवः बहवः कातराः एवं भणन्ति ।
मुग्धे निभालय गगनतलं कति जनाः ज्योत्स्नां कुर्वन्ति ॥ १ ॥]

हम थोड़े हैं, शत्रु बहुत हैं, ऐसा कायर कहते हैं। हे मुग्धे, इस गगनतल को देखो न कितने लोग (तारों से अभिप्राय है।) ज्योत्स्ना करते हैं। अर्थात् लाखों तारे ज्योत्स्ना नहीं करते, केवल चन्द्र ही ज्योत्स्ना करता है। 'अम्हइं' आदेश का उदाहरण—

अम्बणु लाइवि जे गया पहिअ पराया केवि।
अवस न सुअहिँ सुहच्छिअहिं जिवँ अम्हइँ तिवँ ते वि ॥२॥
[अम्लत्वं लागयित्वा ये गताः पथिकाः परकीयाः केऽपि ।
अवश्यं न स्वपन्ति सुखासिकायां यथा वयं तथा तेऽपि ॥२॥]

(अम्लत्व-स्नेह लगा कर जो पथिक—अन्य स्त्रियों के प्रियतम परदेश चले गए, अवश्य ही वे सुखपूर्वक नहीं सोते होंगे। जैसे हम हैं (जैसी स्थिति हमारी है।) वैसे ही वे भी होंगे। (अर्थात् वे भी कष्ट में ही होंगे)।) इसी प्रकार द्वितीया के बहुवचन में—अम्हे देक्खइ। अम्हइं देक्खइ। (अस्मान् पश्यति)। हमलोगों को देखता है। वचन भेदो यथासंख्य निवृत्यर्थः। वचन भेद इसलिए किया गया है कि प्रथमा बहुवचन में अम्हें और द्वितीया बहुवचन में 'अम्हइं' क्रमशः न आदेश होने लगे।

टा-ङ्यमा मइं ॥ ३७७ ॥

अपभ्रंशे अस्मदः टा, ङि, अम् इत्येतैः सह मइं इत्यादेशो भवति ॥ टा ॥ (अपभ्रंश में अस्मद् से परे टा ङि अम् अर्थात् तृतीया सप्तमी और द्वितीया की एकवचन विभक्ति के साथ अस्मद् शब्द को 'मइं' आदेश होता है।) यथा—तृतीया के एकवचन में—

मइँ जाणिउँ पिअ विरहिअहं क वि धर होइ विआलि।
णवर मिअङ्कु वि तिह तवइ जिह दिणयरु खयगालि ॥ १ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[मया ज्ञातं प्रिय विरहितानां कापि धरा भवति विकाले ।
केवलं (= परं) मृगाङ्कोऽपि तथा तपति यथा दिनकरः क्षयकाले ॥१॥]

(हे प्रिय, मैंने समझा था प्रिय रहित जनों के लिए विकाल (संध्या समय) कुछ धैर्य होगा, पर उस समय तो मृगलाञ्छनवाला यह चन्द्रमा इतना तपता है जितना प्रलयकाल में दिनकर (सूर्य) ।)

ङिना । सप्तमी के एकवचन में—पइं मइं वेहिं वि रण गयहिं [३७०।३]

अमा । द्वितीया के एकवचन में—मइं मेल्लन्तहों तुज्झु । [३७०।४]

अम्हेहिं भिसा ॥ ३७८ ॥

अपभ्रंशे अस्मदो भिसा सह अम्हेहिं इत्यादेशो भवति ॥ (अपभ्रंश में अस्मद् शब्द को तृतीया बहुवचन की विभक्ति के साथ 'अम्हेहिं' आदेश होता है ।) यथा—

तुम्हेँहिँ अम्हेँहिँ जं किअउँ [३७१।१]

महु मज्झु ङसि-ङस्भ्याम् ॥ ३७९ ॥

अपभ्रंशे अस्मदो ङसिना ङसा च सह प्रत्येकं महु मज्झु इत्यादेशौ भवतः ॥ (अपभ्रंश में अस्मद् शब्द को पञ्चमी और षष्ठी के एकवचन की विभक्ति के साथ महु और मज्झु आदेश होते हैं ।) यथा—महु होन्तउ गदो । मज्झु होन्तउ गदो ॥ [मत्तः गतः] मेरे यहाँ से गया है ।

ङसा । षष्ठी के एकवचन का उदाहरण—

महु कन्तहों बे दोसडा हेल्लि म झङ्खहि आलु ।
देन्तहों हउं पर उव्वरिअ जुज्झन्तहों करवालु ॥१॥

[मम कान्तस्य द्वौ दोषौ सखि मा पिधेहि अलीकम् ।
ददतः परं अहं उर्वरिता युध्यमानस्य करवालः ॥२॥]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(हे सखि, झूठ मत बोल, मेरे कान्त के दो दोष हैं, दान करते हुए तो मैं बच गई (मुझे किसी को दान नहीं किया, एक दोष यह) और युद्ध करते हुए तलवार बच गई। यह दूसरा) यहाँ षष्ठी एकवचन में महु आदेश हुआ है।

षष्ठी एकवचन में मज्झु आदेश का उदाहरण—
जइ भग्गा पारक्कडा तो सहि मज्झु पिएण।
अह भग्गा अम्हहं तणा तो तें मारिअडेण॥ २॥

[यदि भग्नाः परकीयाः तत्सखि मम प्रियेण।
अथ भग्नाः अस्मदीयाः तत्तेन मारितेन॥२॥]

(हे सखि, यदि शत्रु पक्षवाले भागे तो मेरे प्रिय से और यदि हमारे पक्ष वाले भागे तो प्रियतम के मारे जाने पर।)

अम्हहं भ्यसाम्भ्याम् ॥ ३८० ॥

अपभ्रंशे अस्मदो भ्यसा आमा च सह अम्हहं इत्यादेशो भवति॥ (अपभ्रंश में अस्मद् शब्द को पञ्चमी और षष्ठी की बहु-वचन विभक्ति के साथ 'अम्हहं' आदेश होता है।) यथा—अम्हहं होन्तउ आगदो (अस्मद् आगतः) हम लोगों के यहाँ से आया है। आमा। षष्ठी के बहुवचन में—अह भग्गा अम्हहं तणा [३७९।२]

सुपा अम्हासु ॥ ३८१ ॥

अपभ्रंशे अस्मदः सुपा सह अम्हासु इत्यादेशो भवति॥ (अप-भ्रंश में अस्मद् शब्द को सप्तमी की बहुवचन-विभक्ति के साथ अम्हासु आदेश हो जाता है।) यथा—अम्हासु ठिअं॥ [अस्मासु स्थितम्] (हम लोगों में स्थित)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्यादेराद्यत्रयस्य संबन्धिनो हिं न वा ॥३८२॥

त्यादीनामाद्यत्रयस्य संबन्धिनो बहुष्वर्थेषु वर्तमानस्य वचनस्यापभ्रंशे हिं इत्यादेशो वा भवति ॥ ('ति' इत्यादि जो आद्यत्रय अर्थात् अन्य पुरुष के एकवचन द्विवचन और बहुवचन विभक्तियाँ हैं, उनमें बहुवचन विभक्ति को अपभ्रंश में 'हि' आदेश विकल्प से होता है।) यथा—

मुह-कबरि-बन्ध तहें सोह धरहिँ।
नं मल्ल-जुज्झु ससि-राहु करहिं ॥
तहें सहहिँ कुरल भमर-उल-तुलिअ।
नं तिमिर-डिम्भ खेल्लन्ति मिलिअ ॥ १ ॥

[मुखकबरीबन्धौ तस्याः शोभां धरतः ।
ननु मल्लयुद्धं शशिराहू कुरुतः ॥
तस्याः शोभन्ते कुरलाः भ्रमरकुलतुलिताः ।
ननु तिमर डिम्भाः क्रीडन्ति मिलिताः ॥ १ ॥

(उसके मुख और कबरीबंध शोभा धारण करते हैं, मानो शशि और राहु मल्लयुद्ध कर रहे हैं। भ्रमरकुल के समान (काले काले) उसके अलक ऐसे लग रहे हैं, मानो अन्धकार के बच्चे मिल कर खेल रहे हैं।)

यहाँ 'धरहिँ', करहिं संस्कृत द्विवचन हैं पर अपभ्रंश के बहुवचन में, और 'सहहिं' भी बहुवचन का रूप है। यहाँ बहुवचन में 'हिं' विभक्ति लगी है।

मध्यत्रयस्याद्यस्य हिः ॥३८३॥

त्यादीनां मध्यत्रयस्य यदाद्यं वचनं तस्यापभ्रंशे हि इत्यादेशो वा भवति ॥ (तिङ् प्रत्यहार के मध्यत्रय अर्थात् मध्यमपुरुष, उसके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आदि वचन-(एकवचन) की विभक्ति को 'हि' आदेश हो जाता है।) यथा—

बप्पीहा पिउ पिउ भणवि कित्तिउ रुअहि हयास।
तुह जलि महु पुणु वल्लहइ बिहुँ वि न पूरिअ आस ॥१॥
[चातक, "पिउ पिउ" (पिबामि पिबामि तथा प्रियः प्रियः इति) भणित्वा कियद्रोदिषि हताश।
तव जले मम पुनर्वल्लभे द्वयोरपि न पूरिता आशा ॥ १ ॥]

(हे चातक, "पिउ पिउ", 'पीऊँगा पीऊँगा' और 'प्रिय, प्रिय' ऐसा कहकर हताश, कब तक रोओगे ? जल के संबंध में तुम्हारी और प्रियतम के सम्बन्ध में मेरी आशा नहीं पूरी होगी।) यहाँ पर 'रुअहि' में मध्यम पुरुष एकवचन की 'हि' विभक्ति लगी है।

आत्मने पदे -(आत्मने पद में भी) मध्यम पुरुष एकवचन में 'हि आदेश होता है। यथा—

बप्पीहा कइँ बोल्लिएण निग्घिण वार इ वार।
सायरि भरिअइ विमल-जलि लहहि न एकइ धार ॥२॥
[चातक किं कथनेन निर्घृण वारंवारम्।
सागरे भृते विमलजलेन लभसे न एकामपि धाराम् ॥२॥]

(हे निर्दय चातक, बार-बार रटने से क्या (फ़ायदा) ? विमल जल से सागर के भरे रहने पर भी एक भी धारा [बूंद] उसमें से नहीं प्राप्त कर सकता)। यहाँ 'लहहि' में आत्मने पद में भी 'हि' आदेश हो गया है। सप्तम्याम्। सप्तमी में भी हि आदेश होता है।

आयहिँ जम्महिँ अन्नहिँ वि गोरि सु दिज्जहि कन्तु।
गय मत्तहँ चत्तङ्कुसहं जो अब्भिडइ हसन्तु ॥३॥
[अस्मिन् जन्मनि अन्यस्मिन्नपि गौरि तं दद्याः कान्तम्।
गजानां मत्तानां त्यक्ताङ्कुशानां यः संगच्छते हसन् ॥३॥]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(हे गौरि, इस जन्म में और दूसरे जन्म में भी वही कान्त देना, जो मदमत्त और अंकुश की कुछ भी परवा न करने वाले हाथियों से आकर भिड़ जाय।)

यहाँ 'आयहिं' 'जम्महिं' 'अन्नहिं' ये सप्तमी एक वचन के रूप हैं तथा 'दिज्जहि' मध्यम पुरुष एकवचन का रूप है यहाँ 'हि' विभक्ति लगी है। मध्यम पुरुष के एकवचन के स्थान पर विकल्प से 'हि' विभक्ति का आदेश होता है। आदेश जहाँ नहीं होगा वहाँ पर 'रुअसि इयास' इत्यादि रूप होंगे।

बहुत्वे हुः ॥ ३८४ ॥

त्यादीनां मध्यमत्रयस्य संबन्धि बहुष्वर्थेषु वर्तमानं यद्वचनं तस्यापभ्रंशे हु इत्यादेशो वा भवति॥ ('ति' आदि में मध्यमत्रय अर्थात् मध्यमपुरुष, उसके बहुवचन की विभक्ति के स्थान पर विकल्प से 'हु' आदेश हो जाता है।) यथा—

बलि-अब्भत्थणि महु-महणु लहुई हूआ सोइ।
जइ इच्छहु वड्डुतणउं देहु म मग्गहु कोइ॥ १॥

[बलेः अभ्यर्थने मधुमथनो लघुकीभूतः सोऽपि।
यदि इच्छथ महत्त्वं (वड्डुत्तणउं) दत्त, मा मार्गयत कमपि॥१॥]

(बलि की अभ्यर्थना (याचना) करने पर वह मधुमथन (विष्णु) भी लघु हो गए, यदि महत्ता चाहते हो तो दो, पर किसी से माँगो मत।) यहाँ 'इच्छहु' मध्यम पुरुष एक वचन विभक्ति के स्थान में 'हु' आदेश है। 'हु' आदेश विकल्प से होता है अतः जहाँ नहीं होगा वहाँ—'जइ इच्छह' ऐसा रूप रह जायगा।

अन्त्यत्रयस्याद्यस्य उं ॥ ३८५ ॥

त्यादीनामन्त्यत्रयस्य यदाद्यं वचनं तस्यापभ्रंशे उं इत्यादेशो वा भवति। ('ति' आदि में अन्त्यत्रय अर्थात् उत्तमपुरुष के एक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वचन की विभक्ति के स्थान में अपभ्रंश में विकल्प से 'उं' आदेश हो जाता है।) यथा—

विहि विणडउ पीडन्तु गह मं धणि करहिं विसाउ।
संपइ कड्ढउँ वेस जिवँ छुडु अग्घइ ववसाउ ॥ १ ॥
[विधिर्विनाटयतु ग्रहाः पीडयन्तु मा धन्ये कुरु विषादम्।
संपदं कर्षामि वेषमिव यदि अर्घति (स्यात्) व्यवसायः ॥१॥]

(भाग्य नाश कर दे, ग्रह पीड़ा दें, (फिर भी) हे धन्या, विषाद मत कर। यदि व्यवसाय मिले तो संपत्ति को वेश के समान निकाल लूँगा।)

यहाँ पर 'कड्ढउ' उत्तम पुरुष एकवचन की विभक्ति के स्थान पर 'उँ' आदेश है। ऐसे ही वलि किज्जउँ सुअणस्सु [३३८।१] यहाँ 'किज्जउँ' उत्तम पुरुष एकवचन का रूप है।

'उ' आदेश विकल्प से होता है, अतः जहाँ नहीं होगा वहाँ— 'संपइ कड्ढामि' इत्यादि रूप होंगे।

बहुत्वे हुं ॥ ३८६ ॥

त्यादीनामन्त्यत्रयस्य संबन्धि बहुष्वर्थेषु वर्तमानं यद्वचनं तस्य 'हुं' इत्यादेशो वा भवति ॥ ('ति' आदि के अन्त्यत्रय अर्थात् उत्तम पुरुष के बहुवचन की विभक्ति को अपभ्रंश में विकल्प से 'हुं' आदेश होता है।) यथा—

खग्ग विसाहिउ जहिँ लहहुं पिय तहिँ देसहिँ जाहुं।
रण दुब्भिक्खें भग्गाइं विणु जुज्झें न वलाहुं ॥१॥
[खड्ग विसाधितं यत्र लभामहे तत्र देशे यामः।
रण दुर्भिक्षेण भग्नाः विना युद्धेन न वलामहे ॥ १ ॥]

(हे प्रिय, जहाँ खड्ग का व्यवसाय प्राप्त करें उस देश में हम चलेंगे। रण के दुर्भिक्ष के कारण (युद्ध न होने के कारण) हम टूट गए हैं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(दुर्बल हो गए हैं)। युद्ध के बिना नहीं बल प्राप्त करेंगे।) यहाँ 'लहहुं' उत्तम पुरुष बहुवचन का रूप है। जहाँ पर 'हुं' आदेश नहीं होगा, वहाँ 'जहिँ लहिमु' ऐसा रूप रह जायगा।

हि स्वयोरिदुदेत् ॥३८७॥

पञ्चम्या हि स्वयोरपभ्रंशे इ उ ए इत्येते त्रय आदेशा वा भवन्ति ॥ (आज्ञा अर्थ में मध्यम पुरुष के एकवचन और बहुवचन में अपभ्रंश की विभक्ति 'इ' 'उ' और ए विकल्प से आदेश होती हैं ।) इत् । इ आदेश यथा—

कुञ्जर सुमरि म सल्लइउ सरला सास म मेल्लि ।
कवल जि पाविय विहि-वसिण ते चरि माणु म मेल्लि ॥१॥
[कुञ्जर स्मर मा सल्लकीः सरलान् श्वासान् मा मुञ्च ।
कवलाः ये प्राप्ताः विधिवशेन तांश्चर मानं मा मुञ्च ॥१॥]

(हे कुंजर, सल्लकी नामक वृक्षों का स्मरण न कर और लंबी साँस मत छोड़, भाग्य-वश जो कवल प्राप्त कर लिया है, उसी को चर, पर अपने मान को मत छोड़।] यहाँ 'सुमरि' 'मेल्लि' और 'चरि' मध्यम पुरुष एकवचन में आज्ञा अर्थ में 'इ' आदेश के उदाहरण हैं।

'उ' आदेश का उदाहरण—

भमरा एत्थु वि लिम्बडइ कें वि दियहडा विलम्बु ।
घण-पत्तलु छाया-बहुलु फुल्लइ जाम कयम्बु ॥ २ ॥
[भ्रमर अत्रापि निम्बके कति (चित्) दिवसान् विलम्बस्व ।
घनपत्रवान् छायाबहुलो फुल्लति यावत्कदम्बः ॥]

(हे भौंरे, यहीँ नीम पर ही कुछ दिन व्यतीत कर, जब तक घने पत्तोंवाला छाया बहल (संपन्न) कदंब नहीं फूलता।) यहाँ 'विलम्बु' में मध्यम पुरुष बहुवचन की 'उ' विभक्ति का आदेश हुआ है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'ए' आदेश का उदाहरण—

प्रिय एम्वहिँ करेँ सेल्लु करि छड्डहि तुहुँ करवालु ।
जं कावालिय बप्पुडा लेहिँ अभग्गु कवालु ॥ ३ ॥

[प्रिय एवमेव कुरु भल्लं करे, त्यज त्वं करवालम् ।
येन कापालिका वराकाः लान्ति अभग्नं कपालम् ॥ ३ ॥]

(हे प्रिय, ऐसे हो हाथ में भाला रख, करवाल (तलवार) छोड़ दे, जिससे बेचारे कापालिक अभग्न कपाल लें ।) यहाँ 'करेँ' मध्यम पुरुष एक वचन में 'ए' विभक्ति आदेश का उदाहरण है ।

जहाँ ये वैकल्पिक आदेश नहीं होंगे, वहाँ सुमरि आदि के स्थान पर 'सुमरहि' आदि रूप होंगे ।

वत्स्यति-स्यस्य सः ॥३८८॥

अपभ्रंशे भविष्यदर्थविषयस्य त्यादेः स्यस्य सो वा भवति ॥ (अपभ्रंश में भविष्यत् अर्थ जहाँ विषय हो वहाँ 'ति' आदि में 'स्य' के स्थान में 'स' विकल्प से आदेश होता है ।) यथा—

दिअहा जन्ति झडप्पडहिं पडहिँ मनोरह पच्छि ।
जं अच्छइ तं माणिअइ होसइ करतु म अच्छि ॥१॥

[दिवसा यान्ति वेगैः (झडपडुहिं) पतन्ति मनोरथाः पश्चात् ।
यदस्ति तन्मान्यते भविष्यति (इति) कुर्वन् मा आस्स्व ॥१॥

(दिवस झटपट बड़े वेग से निकलते चले जा रहे हैं, मनोरथ पीछे ही रह जाते हैं । (अतः) जो है, उसी को मानते हैं, 'होगा' ऐसा कहते हुए मत ठहरिए ।.) यहाँ 'होसइ' 'भविष्यति' के स्थान पर है । भविष्यकाल के 'ष्य' के स्थान पर अपभ्रंश में 'स' आदेश का उदाहरण है । यह 'स' विकल्प से आदेश होता है, अतः जहाँ नहीं आदेश होगा वहाँ 'होहिइ' ऐसा रूप रहेगा ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्रियेः कीसु ॥३८९॥

क्रिये इत्येतस्य क्रिया पदस्यापभ्रंशे कीसु इत्यादेशो वा भवति ॥ (कृञ् धातु से बना हुआ 'क्रिये' रूप जो क्रियापद उसे अपभ्रंश में 'कीसु' आदेश विकल्प से होता है।) यथा—

सन्ता भोग जु परिहरइ तसु कन्तहो बलि कीसु।
तसु दइवेण वि मुण्डियउँ जसु खल्लिहडउँ सीसु ॥१॥
[सतो भोगान् यः परिहरति तस्य कान्तस्य बलिं क्रिये।
तस्य दैवेनैव मुण्डितं यस्य खल्वाटं शीर्षम् ॥१॥]

(भोगों के रहते हुए भी जो उन्हें छोड़ देता है, उस कान्त को मैं बलि जाऊँ, जो खल्वाट है (गंजा है), उसे ते दैव ने ही मुंडित किया है।)

यहाँ कीसु 'क्रिये' के स्थान पर आदेश है।

'क्रिये' के स्थान में 'कीसु' विकल्प से आदेश होता है अतः जहाँ नहीं होगा वहाँ बलिं किज्जउँ सुअणस्सु (३३८/१) 'किज्जउँ' रूप भी होगा। साध्यमानावस्थात् क्रिये इति संस्कृतशब्दादेष प्रयोगः॥ ('क्रिये' यह रूप संस्कृत तिङन्त का साध्यप्रयोग है। इसीके स्थान में 'कीसु' अदेश होता है।

भुवः पर्याप्तौ हुच्चः ॥३९०॥

अपभ्रंशे भुवो धातोः पर्याप्तावर्थे वर्तमानस्य हुच्च इत्यादेशो भवति ॥ (अपभ्रंश में पर्याप्ति अर्थ में विद्यमान भू धातु को हुच्च आदेश होता है।) यथा—

अइत्तुंगत्तणु जं थणह सो छेयउ न हु लाहु।
सहि जइ केवँइ तुडि वसेँण अहरि पहुच्चइ नाहु॥ १ ॥
[अतितुङ्गत्वं यत्स्तनयोः स च्छेदकः न खलु लाभः।
सखि यदि कथमपि त्रुटिवशेन अधरे प्रभवति नाथः ॥१॥]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(स्तनों की अत्यन्त ऊँचाई जो है, वह कष्टकर ही है लाभकर नहीं। हे सखि, इनके कारण प्रियतम किसी प्रकार से बहुत देर से अधर तक पहुँच पाते हैं)।

यहाँ भवति के स्थान में हुच्च आदेश हो गया है। प्रभवति = पहुच्च।

ब्रूगो ब्रुवो वा ॥३९१॥

अपभ्रंशे ब्रूगो धातोर्ब्रुव इत्यादेशो वा भवति ॥ (अपभ्रंश में ब्रूग धातु को ब्रुव आदेश विकल्प से होता है।) यथा—ब्रुवह सुहासिउ किंपि। [ब्रूत सुभाषितं किमपि) (कुछ सुभाषित कहो)। पक्षे। जहाँ आदेश नहीं होगा वहाँ—

इत्तउँ ब्रोप्पिणु सउणि ठिउ पुणु दूसासणु ब्रोप्पि।
तो हउँ जाणउँ एहो हरि जइ महु अग्गइ ब्रोप्पि ॥१॥
[इयत् उक्त्वा शकुनिः स्थितः पुनर्दुःशासन उक्त्वा।
तदा अहं जानामि एष हरिः यदि ममाग्रतः उक्त्वा ॥२॥]

(इतना कहकर शकुनि चुप रहा, फिर दुःशासन बोलकर चुप रहा, तब मैं समझूँ कि यह हरि हैं जब मेरे आगे से बोलकर—॥) 'ब्रोप्पिणु' 'ब्रोप्पि' आदि पूर्वकालिक क्रिया के रूप है।

व्रजे र्वुञः ॥३९२॥

अपभ्रंशे व्रजतेर्धातोर्वुञ इत्यादेशो भवति। (अपभ्रंश में व्रज धातु को वुञ आदेश होता है।) यथा-वुञइ (व्रजति) (जाता है।), वुञेप्पि, वुञेप्पिणु (व्रजित्वा) (जाकर) इत्यादि।

दृशेः प्रस्सः ॥३९३॥

अपभ्रंशे दृशेर्धातोः प्रस्स इत्यादेशो भवति ॥ (अपभ्रंश में 'दृश' धातु को प्रस्स आदेश होता है।) यथा—प्रस्सदि [पश्यति] (देखता है)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रहेर्गृण्हः ॥३९४॥

अपभ्रंशे ग्रहेर्धातोः गृण्ह इत्यादेशो भवति ॥ (अपभ्रंश में ग्रह धातु को गृण्ह आदेश होता है।) यथा—पढ गृण्हेप्पिणु व्रतु। [पठ गृहीत्वा व्रतम्] (व्रत ग्रहण करके पढ़ो)

तक्ष्यादीनां छोल्लादयः ॥ ३९५ ॥

अपभ्रंशे तक्षिप्रभृतीनां धातूनां छोल्ल इत्यादय आदेशा भवन्ति ॥
(अपभ्रंश में तक्षि प्रभृति धातुओं को छोल्ल आदि आदेश होते हैं।)

यथा—जिवँ तिवँ तिक्खा लेवि कर जइ ससि छोल्लिजन्तु।
तो जइ गोरिहे मुह-कमलि सरिसिम का वि लहन्तु ॥१॥

[यथा तथा तीक्ष्णान् करान् लात्वा यदि शशि अतक्षिष्यत्।
तदा जगति गौर्या मुखकमलेन सदृशतां कामपि अलप्स्यत ॥ १ ॥

जैसे तैसे तीक्ष्ण किरणों को लेकर यदि चन्द्र को छीला जाता तब यदि गोरी के मुख-कमल की समता कुछ पाता तो पाता)। यहाँ 'तक्षि' को 'छोल्ल' आदेश हो गया। आदि ग्रहणाद् देशीषु ये क्रियावचना उपलभ्यन्ते ते उदाहार्याः ॥

सूत्र में 'आदि' शब्द का ग्रहण किया गया है, अतः तत्सामर्थ्यात् देशी में भी जो क्रियाएँ आदेशवाली मिलें, उनका उदाहरण दिया जा सकता है।) तापय् के स्थान में झलक्क (देशी) आदेश होता है। यथा—

चूडुल्लउ चुण्णीहोइ सइ मुद्धि कवोलि निहित्तउ।
सासानल जाल-झलक्किअउ वाह-सलिल-संसित्तउ ॥२॥
[कङ्कणं चूर्णीभवति स्वयं मुग्धे कपोले निहितम्।
श्वासानल-ज्वालासंतप्तं बाष्पजल संसिक्तम् ॥ २ ॥]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(कंगन चूर चूर हो जाता है स्वयं मुग्धा के कपोल पर पड़कर, (वहीं) गर्म श्वास की ज्वाला से जलकर तथा आँसू जल से संसिक्त होकर)। यहाँ कङ्कण को चूडुल्ल आदेश हो गया है।

अनुगम्य के स्थान पर 'अब्भडवंचिउ' आदेश हो जाता है—

अब्भडवंचिउ बे पयइं पेम्मु नियत्तइ जावँ।
सव्वासण-रिउ-संभवहो कर परिअत्ता तावँ ॥ ३ ॥
[अनुगम्य द्वे पदे प्रेम निवर्तते यावत्।
सर्वाशनरिपु संभवस्य कराः परिवृत्ताः तावत् ॥ ३ ॥]

(दो पग साथ चलकर जब तक प्रिय लौटता है, प्रेम निर्वाह जब तक करता है तब तक सर्वाशन (सब खाने वाले=अग्नि) के रिपु=जल समुद्र से संभव=उत्पन्न (चन्द्रमा) को किरणें अस्त हो गईं ॥)

'शल्यायते' के स्थान में खुडुक्कइ' और गर्जति के स्थान में 'घुडुक्कइ' आदेश होते हैं।—

हिअइ खुडुक्कइ गोरडी गयणि घुडुक्कइ मेहु।
वासा-रत्ति-पवासुअहं विसमा संकडु एहु ॥ ४ ॥
[हृदये शल्यायते गौरी गगने गर्जति मेघः।
वर्षारात्रे प्रवासिकानां विषमं संकटमेतत् ॥ ४]

(हृदय में गौरी शाल रही है, गगन में मेघ गर्ज रहा है। वर्षा की रात में प्रवासियों के लिए विषम संकट है।)

संस्कृत में 'स्था' धातु के स्थान पर जहाँ तिष्ठ आदेश होता है, अपभ्रंश में तिष्ठतः के स्थान पर 'थन्ति' आदेश होता है—

अम्मि पओहर वज्जमा निच्चु जे संमुह थन्ति।
महु कन्तहों समरङ्गणइ गय-घड भज्जिउ जन्ति ॥ ५ ॥
[अम्ब पयोधरौ वज्रमयौ नित्यं यौ संमुखौ तिष्ठतः।
मम कान्तस्य समराङ्गणके गजघटाः भंक्तुं यातः ॥ ५ ॥]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(हे अम्मा, (ये, पयोधर वज्रमय हैं जो नित्य ही कंत के संमुख [डटे] रहते हैं। समराङ्गण में गजघटा के भग्न करने के लिए प्रस्तुत रहते हैं।)

आक्रम्यते के स्थान पर 'चम्पिज्जइ' आदेश होता है—

पुत्तें जाएँ कवणु गुणु अवगुणु कवणु मुएण।
जा बप्पी की भुंहडी चम्पिज्जइ अवरेण ॥ ६ ॥

[पुत्रेण जातेन को गुणः अपगुणः कः मृतेन।
यत् पैतृकी (बप्पीकी) भूमिः आक्रम्यतेऽपरेण ॥ ६ ॥]

(उस) पुत्र के होने से क्या लाभ ? और उसके मरने से क्या हानि ? यदि उसके बाप की भूमि दूसरे के द्वारा चाँप ली जाय (ग्रहण कर ली जाय)।

शब्दायते = (ध्वनिं करोति) के लिए 'धुट्ठुअइ' आदेश हो जाता है—

तं तेत्तिउ जलु सायरहो˘ सो तेवड्डु वित्थारु।
तिसहे˘ निवारणु पलु वि न वि पर धुट्ठुअइ असारु ॥ ७ ॥

[तत् तावत् जलं सागरस्य स तावान् विस्तारः।
तृषो निवारणं पलमपि नैव परं शब्दायते असारः ॥ ७ ॥]

(सागर का वह उतना जल ! वह उतना विस्तार ! परन्तु, तृषा का निवारण क्षण भर भी नहीं होता फिर भी व्यर्थ ही धू-धू कर रहा है।)

अनादौ स्वरादसंयुक्तानां क-ख-त-थ-प-फां ग-घ-द-ध-ब-भाः ॥ ३९६ ॥ अपभ्रंशेऽपदादौ वर्तमानानां स्वरात्परेषामसंयुक्तानां क ख त थ प फां स्थाने यथासंख्यं ग घ द ध ब भाः प्रायो भवन्ति ॥ (अपभ्रंश में पद के अनादि (आदि को छोड़कर) में वर्तमान जो स्वर से परे तथा असंयुक्त क, ख, त, थ, प, फ, उनके स्थान में यथासंख्य = क्रमशः ग, घ, द, ध, ब, भ, प्रायः आदेश हो जाते हैं।)

'क' के स्थान में 'ग' का उदाहरण—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जं दिट्ठउँ सोमग्गहणु असइहिँ हसिउँ निसङ्कु ।
पिअ माणुस-विच्छोह-गरु गिलि गिलि राहु मयङ्कु ॥ १ ॥

[यद् दृष्टं सोमग्रहणमसतीभिः हसितं निःशंकम् ।
प्रियमनुष्यविक्षोभकरं गिल गिल रहो मृगाङ्कम् ॥१॥]

(चन्द्र ग्रहण को जो असतियों ने (कुलटाओं ने) देखा तो निःशंक भाव से हँसा, प्रियजनों को वियोग [विछोह] करने वाले चन्द्र को राहु ! निगलो निगलो ।)

खस्य घः । ख का घ होने का उदाहरण—

अम्मीए सत्थावत्थेहिँ सुघिँ चिन्तिज्जइ माणु ।
पिए दिट्ठे हल्लोहलेण को चेअइ अप्पाणु ॥ २ ॥

[अम्ब स्वस्थावस्थैः सुखेन चिन्त्यते मानः ।
प्रिये दृष्टे व्याकुलत्वेन (हल्लोहल) कश्चेतयति आत्मानम् ॥२॥]

(हे अम्मा, स्वस्थावस्था में सुख से मान किया जाता है । प्रिय को देखने पर हलबल में अपने को भी कौन चेतता है ?) यहाँ 'सुख' में ख को 'घ' होगया है ।

त, थ, प और फ को द, ध, ब और भ होने का उदाहरण—

सबधु करेप्पिणु कधिदु मइँ तसु पर सभलउँ जम्मु ।
जासु न चाउ न चारहडि न य पम्हट्ठउ धम्मु ॥ ३ ॥

[शपथं कृत्वा कथितं मया तस्य परं सफलं जन्म ।
यस्य न त्यागः न च आरभटी न च प्रमृष्टः धर्मः ॥३॥]

(शपथ करके मैंने कहा—उसी का सफल जन्म है, जिसका न त्याग न शौर्य और न धर्म नष्ट है ।) यहाँ शपथः—सबधु में प = ब और थ=ध होगया है । कधिदु (कथितं) त को द होगया है । सभलउँ, [सफलम्] में प का भ हो गया है ।

४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनादाविति किम्। (सूत्र में अनादि ग्रहण क्यों किया गया ?) सवधु करेप्पिणु। अत्र कस्य गत्वं न भवति। (करेप्पिणु में आदि में स्थित क का ग न हो जाय)। स्वरादिति किम्। (सूत्र में स्वर से परे रहने पर ही यह नियम क्यों बताया ?) गिलि गिलि राहु मयङ्कु (यहाँ पर मयङ्कु में व्यञ्जन ङ् से परे क को ग न हो जाय।) असंयुक्तानामिति किम्। (सूत्र में असंयुक्त शब्द का ग्रहण क्यों किया) एक्किहिँ अक्खिहिँ सावणु (३५७।२) में (क से संयुक्त होने पर क का ग नहीं हुआ)। प्रायोऽधिकारात्क्वचिन्न भवति ॥ सूत्र में 'प्रायः' शब्द का ग्रहण किया गया है, अतः कहीं कहीं पर यह क आदि के स्थान में ग आदि आदेश नहीं भी होते। इसके लिए उदाहरण—

जइ केवँइ पावीसु पिउ अकिआ कुड्ड करीसु।
पाणिउ नवइ सरावि जिवँ सव्वङ्गे पइसीसु ॥४॥

[यदि कथञ्चित् प्राप्स्यामि प्रियं अकृतं कौतुकं करिष्यामि।
पानीयं नवके शरावे यथा सर्वाङ्गेण प्रवेक्ष्यामि ॥ ४ ॥

(यदि कथंचित् प्रिय को प्राप्त कर लूँ तो न किया हुआ कौतुक भी कर लूँ, पानी जैसे नये कसोरे में प्रवेश कर जाता है वैसे पैठ जाऊँगी [जाऊँ]।)

इसी प्रकार——उअ कणिआरु पफुल्लिअउ कञ्चण-कन्ति-पयासु।
गोरी-वयण-विणिज्जिअउ नं सेवइ वणवासु ॥ ५ ॥

[पश्य कर्णिकारः प्रफुल्लितकः काञ्चनकान्तिप्रकाशः।
गौरी-वदन-विनिर्जितकः ननु सेवते वनवासम् ॥ ५ ॥]

(देख, कञ्चन कान्ति जैसा प्रभावाला कर्णिकार प्रफुल्लित हुआ। वह गोरी के वदन से पराजित (हो) मानो वनवास सेवन कर रहा है।) हाँ भी क आदि के स्थान में ग आदि आदेश नहीं हुए हैं, क्योंकि यसूत्र में 'प्रायः' ग्रहण किया गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मोऽनुनासिको वो वा ॥ ३९७ ॥

अपभ्रंशेऽनादौ वर्तमानस्यासंयुक्तस्य मकारस्यानुनासिको व कारो वा भवति। (अपभ्रंश में अनादि (आदि रहित) स्थित असंयुक्त वर्ण का मकार अनुनासिक 'वँ' कार विकल्प से होता है।) यथा—कवँलु ! कमलु । भवँरु, भमरु ॥ लाक्षणिकस्यापि । (लाक्षणिक को भी) जिवँ=(जिम) तिवँ=(तिम), जेवँ=(जेम) तेवँ=(तेम)। अनादि में स्थित ही मकार को 'वँ' होता है अतः मयणु में म को नहीं हुआ क्योंकि आदि में है। असंयुक्तस्येत्येव। असंयुक्त मकार को ही 'वँ' होता है अतः—तसु पर सभलउँ जम्मु ३९६।३ [तस्य परं सफलं जन्म] में संयुक्त होने के कारण जन्म में मकार 'वँ' नहीं हुआ।

वाधो रो लुक् ॥ ३९८ ॥

अपभ्रंशे संयोगादधो वर्तमानो रेफो लुग वा भवति। (अपभ्रंश में संयोग में नीचे स्थित जो रेफ उसका विकल्प से लोप हो जाता है।) यथा—'जइ केवँइ पावीसु पिउँ [३९६।४] यहाँ 'प्रिय' में नीचे स्थित रेफ का लोप है। जहाँ लोप नहीं होगा वहाँ रेफसहित रूप रहेगा। यथा—जइ भग्गा पारक्कडा तो सहि मज्झु प्रियेण ॥ [३७९।२]

अभूतोऽपि क्वचित् ॥ ३९९ ॥

अपभ्रंशे क्वचिदविद्यमानोऽपि रेफो भवति ॥ (अपभ्रंश में कहीं-कहीं जहाँ रेफ नहीं रहता वहाँ भी आ जाता है।) यथा—

व्रासु महारिसि एँउ भणइ जइ सुइ सत्थु पमाणु।
मायहँ चलण नवन्ताहं दिवि दिवि गंगा-ण्हाणु ॥ १ ॥

[व्यासमहर्षिः एतद्भणति-यदि श्रुतिशास्त्रं प्रमाणम्।
मातृणां चरणौ-नमतां दिवसे दिवसे गङ्गा-स्नानम् ॥१॥]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(व्यास महर्षि यह कहते हैं—यदि श्रुति और शास्त्र प्रमाण है तो माताओं के चरणों में नमने वालों को दिन-दिन गङ्गा स्नान (का फल मिलता है ।) क्वचिदितिकिम् । जहाँ नहीं होगा वहाँ—वासेण वि भारहखम्भि वद्ध [व्यासेनापि भारत स्तंभे बद्धम्] व्यास ने भी भारत को स्तम्भों में बनाया । यहाँ पर व्यास का वास ही रह गया रेफादेश नहीं हुआ ।

आपद्विपत्संपदा द इः ॥ ४०० ॥

अपभ्रंशे आपद् विपद् संपद् इत्येतेषां दकारस्य इकारो भवति । (अपभ्रंश में आपद् विपद् और संपद् शब्दों के दकार को इकार होता है ।)

यथा—अणउ करन्तहो पुरिसहो आवइ आवइ । [अनयं कुर्वंतः पुरुषस्य आपद् आयति । (अनीति करते हुए पुरुष के पास आपत्ति आती है ।)

विवइ=विपद् । संपइ=संपद् । प्रायोऽधिकारात् । ऊपर प्रथम सूत्र से प्रायः का अधिकार चला आ रहा है उसी में यह भी सूत्र है अतः कहीं पर 'इ' नहीं होगा यथा—गुणहिँ न संपय कित्ति पर [३३५।१] यहाँ 'संपइ' न होकर 'संपय' रह गया है ।

कथं-यथा-तथां थादेरेमेमेहेधा डितः ॥४०१॥

अपभ्रंशे कथं यथा तथा इत्येतेषां थादेरवयवस्य प्रत्येकम् एम इम इह, इध इत्येते डितश्चत्वारः आदेशा भवन्ति ॥

अपभ्रंश कथं यथा-तथा इनके 'था' को प्रत्येक को एम, इम, इह इध ये चार डित् होकर आदेश होते हैं । यह आदेश डित् होता है । (डित होने का फल यह होता है कि डित्वात् भस्य टेर्लोपः (पाणि-नीय व्याकरण) का नियम लगता है और प्रत्येक शब्द में बचे भाग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के अन्त अवयव का लोप हो जाता है। यथा—कथं-केम, थ=एम क में अ का लोप, क्+ एम=केम।

उदाहरण—केम समप्पउ दुट्ठु दिणु किध रयणी छुडु होइ।
नव-वहु-दंसण-लालसउ वहइ मणोरह सोइ ।। १ ।।

[कथं समाप्यतां दुष्टं दिनं कथं रात्रिः शीघ्रं (छुडु) भवति।
नववधूदर्शनलालसकः वहति मनोरथान् सोऽपि ।। १ ।।]

(दुष्ट दिन कैसे समाप्त हो, रात कैसे शीघ्र आए, नव वधू को देखने की इच्छा रखने वाला वह भी मनोरथों का वहन करता है (ऐसा मनोरथ करता है)। थ को इम आदेश का उदाहरण—

ओ गोरी-मुह-निज्जिअउ वद्दलि लुक्कु मियङ्कु।
अन्नु वि जो परिहविय तणु सो किवँ [किम्] भवँइ निसङ्कु ।।२।।

[ओ गोरी मुख निर्जितकः वार्दले निलीनः मृगाङ्कः।
अन्योऽपि यः परिभूततनुः स कथं भ्रमति निःशङ्कम् ।। २ ।।]

(ऐ सुनो, गोरी के मुख से पराजित होकर चन्द्रमा बादल में छिप गया है। दूसरा कोई भी जो पराजय प्राप्त शरीरवाला होगा वह कैसे निःशङ्क भाव से घूम सकता है।)

यहाँ कथं के स्थान में किवँ [किम] रूप बना है।

'इह' आदेश का उदाहरण—

बिम्बाहरि तणु रयण-वणु किह ठिउ सिरि आणन्द।
निरुवम-रसु पिएं पिअवि जणु सेसहों दिण्णी मुद्द ।।३।।

[बिम्बाधरे तन्व्याः रदनव्रणः कथं स्थितः श्री आनन्द।
निरुपम रसं प्रियेण पीत्वेव शेषस्य दत्ता मुद्रा ।। ३ ।।]

(तन्वी के बिम्बाधर पर रदनव्रण (दंत क्षत) कैसा सुशोभित हो रहा है, मानों प्रिय ने निरुपम रस पीकर अवशिष्ट पर मुद्रा (मुहर) दे दी है।)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यहाँ कथं=किह है। यथा के स्थान पर जेवँ=जेम का तथा के स्थान पर तेवँ=(तेम) का उदाहरण —

भण सहि निहुअउँ तेवँ मइं जइ पिउ दिट्ठ सदोसु।
जेवँ न जाणइ मज्झु मणु पक्खावडिअं तासु ॥ ४ ॥

[भण सखि निभृतकं तथा मयि यदि प्रियः दृष्टः सदोषः।
यथा न जानाति मम मनः पक्षापतितं तस्य ॥ ४ ॥]

(हे सखि, यदि मेरा प्रिय सदोष है तो मुझसे एकांत में ऐसा बता, जिससे उसका पक्षपाती मेरा मन न जान सके।]

इसी प्रकार यथा और तथा के स्थान पर जिवँ [जिम] और तिवँ [तिम] का उदाहरण है—

'जिवँ जिवँ वङ्किम लोअणहं'' 'तिवँ तिवँ वम्महु निअय-सर [३४४।१]

थ='ह' का उदाहरण—

' मइँ जाणिउ प्रिय विरहिअहं क वि धर होइ विआलि।
नवर मिअङ्कु वि तिह तवइ जिह दिणयरु खय-गालि ॥५॥ [३७७।१]

एवं जिध तिधावुदाहार्यौ। (इसी प्रकार जिध, तिध का भी उदाहरण देना चाहिए)।

यादृक्तादृक्कीदृगीदृशां दादेर्डेहः ॥ ४०२ ॥

अपभ्रंशे यादृगादीनां दादेरवयवस्य डित् एह इत्यादेशो भवति॥

(अपभ्रंशे में 'यादृक' आदि शब्दों के 'द' इत्यादि को एह आदेश होता है जो डित् होता है। (डित् एक संज्ञा है जिसके कारण उस शब्द के अवयव का लोप होता है।) उदाहरण—

मइं भणिअउ बलिराय तुहुँ केहउ मग्गण एहु।
जेहु तेहु न वि होइ वढ सइँ नारायणु एहु ॥ १ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[मया भणितः बलिराज त्वं कीदृग् मार्गणः एषः ।
यादृक्तादृग् नापि भवति मूर्ख स्वयं नारायणः ईदृक् ॥ १ ॥]

(शुक्राचार्य कहते हैं—हे राजा बलि, मैंने कहा था कि किस प्रकार का मंगन यह है, जैसा तैसा यह नहीं है, मूर्ख ! यह स्वयं नारायण हैं)। यहाँ कीदृक्=केहउ, यादृक=जेहु, तादृक्=तेहु ईदृक्=एहु बन गए हैं !

अतां डइसः ॥४०३॥

अपभ्रंशे यादृगादीनामदन्तानां यादृशतादृशकीदृशेदृशानां दादेरवयवस्य डित् अइस इत्यादेशो भवति ॥ (अपभ्रंश में यादृश तादृश कीदृश और ईदृश जो अदन्त शब्द, इनके दआदि अवयव को अइस आदेश हो जाता है।) यादृश= जइसो। तादृश=तइसो। कीदृश=कइसो। ईदृश=अइसो ॥

यत्र तत्रयोस्त्रस्य डिदेत्थ्वत्तु ॥४०४॥

अपभ्रंशे यत्र तत्र शब्दयोस्त्रस्य एत्थु अत्तु इत्येतौ डितौ भवतः। (अपभ्रंश में यत्र तत्र शब्द के 'त्र' को एत्थु और अत्तु आदेश होते हैं, जो डित् होते हैं)। यत्र=जेत्थु, जत्तु । तत्र–तेत्थु, तत्तु।—यथा—

जइ सो घडदि प्रयावदी केत्थु वि लेप्पिणु सिक्खु ।
जेत्थु वि तेत्थु वि एत्थु जगि भण तो तहि सारिक्खु ॥१॥

[यदि स घटयति प्रजापतिः कुत्रापि लात्वा शिक्षाम् ।
यत्रापि तत्रापि अत्र जगति भण तदा तस्याः सदृक्षीम् ॥१॥]

(यदि वह प्रजापति कहीं से शिक्षा लेकर बनाता है तो जहाँ कहीं भी इस जगत् में उस रमणी के समान कौन है ? बताओ। ऐसे ही जत्तु ठिदो=यत्र स्थितः। तत्तु ठिदो=तत्र स्थितः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एत्थु कुत्रात्रे ॥४०५॥

अपभ्रंशे कुत्र अत्र इत्येतयोस्त्रशब्दस्य डित् एत्थु इत्यादेशो भवति ॥ (अपभ्रंश में कुत्र और अत्र शब्द के त्र को एत्थु आदेश होता है जो डित् कहलाता है ।) उदाहरण—केत्थु वि लेप्पिणु सिक्खु ॥ जेत्थु वि तेत्थु वि एत्थु जगि ॥ [४०४।१]

यावत्तावतोर्वादेर्म उं महिं ॥४०६॥

अपभ्रंशे यावत्तावदित्यव्यययोर्वकारादेरवयवस्य म उं महिं इत्येते त्रय आदेशा भवन्ति ॥ (अपभ्रंश में यावत् तावत् इन दोनों अव्ययों के वकारादि अवयव को म, उ और महिं ये तीन आदेश होते हैं ।) यावत्=जाम का उदाहरण—

जाम न निवडइ कुम्भ-यडि सीह—चवेड-चडक्क ।
ताम समत्तहँ मयगलहँ पइ पइ वज्जइ ढक्क ॥१॥
[यावत् न निपतति कुम्भतटे सिंह चपेटाचटात्कारः ।
तावत् समस्तानां मदकलानां (गजानां) पदे-पदे वाद्यते ढक्का ॥१॥]

(जब तक मदगज के गण्डस्थल पर सिंह के चपेटे का चटकार नहीं बजता तब तक सभी मदगजों के पग-पग पर ढोल बजता है ।

उं का उदाहरण अर्थात् यावत् का जाउं और तावत् का ताउं का उदाहरण—

तिलहँ तिलत्तणु ताउँ पर जाउँ न नेह गलन्ति ।
नेहि पणट्ठइ ते ज्जि तिल तिल फिट्टवि खल होन्ति ॥२॥
[तिलानां तिलत्वं तावत् परं यावत् न स्नेहाः गलन्ति ।
स्नेहे प्रनष्टे ते एव तिलाः भ्रष्टा खलाः भवन्ति ॥२॥]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(तिलों का तिलत्व तभी तक है जब तक उनका तैल निकाला जाता; स्नेह (तेल) के निकल जाने पर तिल नष्ट होकर खली हो जाते हैं।) महि का उदाहरण अर्थात् यावत् का जामहिं और तावत् का तामहिं का उदाहरण—

जामहिँ विसमी कज्ज-गइ जीवहँ मज्झे एइ।
तामहिँ अच्छउ इयरु जणु सुअणु वि अन्तरु देइ ॥३॥

[यावद विपमा कार्यगतिः जीवानां मध्ये आयाति।
तावदास्तामितरः जनः सुजनोऽप्यन्तरं ददाति ॥३॥]

(जब जीवों में विषम कार्य गति आती है तब साधारण जनों की तो बात ही क्या ? सुजन लोग भी भेद करते हैं)।

वा यत्तदोतोर्डेवडः ॥ ४०७ ॥

अपभ्रंशे यद् तत् इत्येतयोरत्वन्तयोर्यावत्तावतोर्वकारादेरवयवस्य डित् एवड इत्यादेशो वा भवति ॥ (अपभ्रंश में यद् तत् अवयव वाले यावत् तावत् शब्दों के वकारादि अवयव को विकल्प से एवड आदेश होता है।) अर्थात् यावत्-जेवड, तावत्—तेवड। यथा—

जेवडु अन्तरु रावण-रामहँ तेवडु अन्तरु पट्टणगामहँ।
[यावदन्तरं रावणरामयोस्तावदन्तरं पत्तनग्रामयोः]

(जितना अन्तर रावण राम का है, उतना अन्तर पत्तन (नगर) और गाँव का है)। जहाँ पर जेवड, तेवड नहीं होगा वहाँ पत्ते, जेत्तुलो। तेत्तुलो, हो जाते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वेदं-किमोर्यादिः ॥ ४०८ ॥

अपभ्रंशे इदम् किम् इत्येतयोरत्वन्तयोरियत्कियतोर्यकारादेरवयवस्य डित् एवड इत्यादेशो वा भवति ॥ (अपभ्रंश में इयत् कियत् के यादि [य + आदि] अवयव को डित् एवड आदेश विकल्प से होता है। यथा—एवड्डु अन्तरु। [इयत् अन्तरम्] केवड्डु अन्तरु। (कियत् अन्तरम्) पक्षे। जहाँ यह वैकाल्पिक आदेश नहीं होगा वहाँ एत्तुलो [इयत्] केत्तुलो [कियत्]।

परस्परस्यादिरः ॥४०९॥

अपभ्रंशे परस्परस्यादिरकारो भवति ॥ (अपभ्रंश में परस्पर शब्द के आदि में अकार का आदेश होता है। यथा—

ते मुग्गडा हराविआ जे परिविट्ठा ताहं।
अवरोप्परु जोअन्ताहं सामिउ गञ्जिउ जाहं ॥१॥

[ते मुद्गाः हारिताः ये परिविष्टाः तेषाम्।
परस्परं युद्ध्यमानानां स्वामी पीडितः येषाम् ॥ १ ॥]

(वे मूंग नष्ट हो गए जो उन्हें परोसे गए जिन्होंने परस्पर युद्ध करके स्वामी को पीड़ित किया।) गंजिउ = पीडित। गांजणे—मराठी।

कादि-स्थैदोतोरुच्चार-लाघवम् ॥ ४१० ॥

अपभ्रंशे कादिषु व्यञ्जनेषु स्थितयोः ए ओ इत्येतयोरुच्चारणस्य लाघवं प्रायो भवति ॥ (अपभ्रंश में स्थित क आदि व्यंजनों में रहने वाले ए और ओ का उच्चारण प्रायः लघु होता है।) यथा सुघेँ चिन्तिजइ माणु [३९६।२]" यहाँ सुघेँ में ए का उच्चारण लघु है। इसी प्रकार—तसु हउँ कलिजुगि दुल्लहहोँ [३३८।१] यहाँ दुल्लहहोँ में ओ का उच्चारण लघु है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पदान्ते उं हुं हिं हंकाराणाम् ॥ ४११ ॥

अपभ्रंशे पदान्ते वर्तमानानां उं, हुं, हिं, हं इत्येतेषां उच्चारणस्य लाघवं प्रायो भवति। (अपभ्रंश में पदान्त में स्थित जो उं, हुं, हिं, और हं उनके उच्चारण में प्रायः लाघव होता है।) यथा—

उं—(१) अन्नु जु तुच्छउँ तहेँ धणहे [३५०।१]॥
(२) बलि किज्जउँ सुअणस्सु [३३८।१]॥

हुँ—(१) दइउ घडावइ वणि तरुहुं [३४०।१]
(२) तरुहुँ वि वक्कलु [३४१।२],,

हिं—(१) खग्ग-विसाहिउ जहिं लहहुं [३८६।१],,

हं—(१) तणहँ तइज्जी भङ्गि न वि [३३९।१],,

म्हो म्भो वा ॥४१२

अपभ्रंशे म्ह इत्यस्य स्थाने म्भ इति मकाराक्रान्तो भकारो वा भवति॥ (अपभ्रंश में 'म्ह' के स्थान पर 'म्भ' (मकाराक्रान्त भकार विकल्प से होता है) म्ह इति पक्ष्म-श्म-ष्म स्म ह्मां म्हः [२।७४] इति प्राकृतलक्षणविहितोऽत्र गृह्यते। (प्राकृत व्याकरण के सूत्र [२।७४] के अनुसार बना 'म्ह' का ही सूत्र में ग्रहण किया गया है।) संस्कृते तदसंभवात् (क्योंकि संस्कृत में 'म्ह' रूप मिलना असंभव है।) गिम्ह—गिम्भो। सिम्ह—सिम्भो। इसी प्रकार—

बम्भते विरला के वि नर जे सव्वङ्ग छइल्ल।
जे वङ्का ते वञ्चयर जे उज्जुअ ते वइल्ल ॥१॥

[ब्रह्मन् ते विरलाः केऽपि नराः ये सर्वाङ्गच्छेकाः।
ये वक्राः ते वञ्च (क) तराः ये ऋजवः ते बलीवर्दाः ॥१॥]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(हे ब्रह्मन् , वे मनुष्य दुर्लभ हैं, जो सर्वाङ्गतः (सब प्रकार से) निपुण हैं, जो वक्र (बांके , वे वंचक हैं और जो सीधे हैं, वे बैल हैं)।

अन्यादृशोन्नाइसावराइसौ ॥ ४१३ ॥

अपभ्रंशे अन्यादृश शब्दस्य अन्नाइस अवराइस इत्यादेशौ भवतः ॥ (अपभ्रंश में अन्यादृश शब्द को अन्नाइस और अवराइस आदेश होते हैं यथा—अन्नाइसो । अवराइसो ॥

प्रायसः प्राउ-प्राइव-प्राइम्ब-पग्गिम्वाः ॥ ४१४ ॥

अपभ्रंशे प्रायस् इत्येतस्य प्राउ, प्राइव, प्राइम्व पग्गिम्व इत्येते चत्वार आदेशा भवन्ति ।। (अपभ्रंश में प्रागस् शब्द के स्थान पर प्राउ, प्राइव, प्राइम्व और पग्गिम्व ये चार आदेश होते हैं)। यथा—प्राउ—

अन्ने ते दीहर लोअण अन्नु तं भुअ-जुअलु ।
अन्नु सु घण-थण-हारु तं अन्नु जि मुह-कमलु ।।
अन्नु जि केस-कलावु सु अन्नु जि प्राउ विहि ।
जेण णिअम्बिणि घडिअ स गुण-लायण्ण-णिहि ।। १ ।।

[अन्ये ते दीर्घे लोचने अन्यत् तद् भुजयुगलम् ।
अन्यः स घनस्तनभारः तदन्यदेव मुखकमलम् ।।
अन्य एव केशकलापः सः अन्य एव प्रायो विधिः ।
येन नितम्बिनी घटिता सा गुणलावण्यनिधिः ।। १ ।।]

(वे बड़ी-बड़ी आँखें दूसरी ही हैं. वे दोनों भुजाएँ कुछ और ही हैं, वह पृथुल स्तनभार कुछ और ही है; वह मुख कमल भी दूसरा ही है, वह केश-कलाप भी अन्य ही है, गुण और सौंदर्य निधि उस नितम्बिनी को जिसने बनाया वह विधि भी अन्य ही है ।।१।।) [अन्य = विचित्र]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राइव—प्राइवमुणिहँ वि भन्तडी तें मणिअडा गणन्ति ।
अखइ निरामइ परमपइ अज्जविलउ न लहन्ति ॥२॥

[प्रायोमुनिनामपि भ्रान्तिः ते मणीन् गणयन्ति ।
अक्षये निरामये परमपदे अद्यापि लयं न लभन्ते ॥ २ ॥]

(प्रायः मुनियों को भी भ्रांति है, वे मनका गिनते हैं; अक्षय, निरामय परमपद में अब भी लय नहीं लगाते (तन्मय नहीं होते ।)

प्राइम्व—अंसु जलें प्राइम्व गोरिअहे सहि उव्वत्ता नयणसर ।
तें संमुह संपेसिआ देन्ति तिरिच्छी घत्त पर ॥ ३ ॥

[अश्रुजलेन प्रायः गौर्याः सखि उद्वृत्ते नयनसरसी ।
ते संमुखे संप्रेपिते दत्तः तिर्यग् घातं परम् ॥ ३ ॥]

(हे सखि, गोरी की नयन-सरसी अश्रु जल से प्रायः भरी रहती है, वे नयन जब किसी के सामने होते हैं तो तिरछी चोट करते हैं) ।

पग्गिम्व—एसी पिउ रूसेसु हउँ रुट्ठी मइँ अणुणेइ ।
पग्गिम्व एइ मणोरहइं दुक्करु दइउ करेइ ॥ ४ ॥

[एष्यति प्रियः रोषिष्यामि अहं रुष्टां मामनुनयति ।
प्रायः एतान् मनोरथान् दुष्करः दयितः कारयति ॥ ४ ॥]

(प्रिय आएगा, मैं रूठूँगी, रुठी हुई मुझे वह मनाएगा (अनुनय करेगा) ऐसे मनोरथ प्रायः दुष्कर पति कराता है ।) ॥ ४ ॥

वान्यथोऽनुः ॥ ४१५ ॥

अपभ्रंशे अन्यथा शब्दस्य अनु इत्यादेशो वा भवति ॥ (अपभ्रंश में अन्यथा शब्द को विकल्प से अनु आदेश होता है ।) यथा—

विरहाणल-जाल करालिअउ पहिउ को वि बुड्डिवि ठिअउ ।
अनु सिसिर-काल सीअल-जलहु धूमु कहन्तिहु उट्ठिअउ ॥ १ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[विरहानलज्वालाकरालितः पथिकः कोऽपि मङ्क्त्वा स्थितः ।
अन्यथा शिशिरकाले शीतलजलात् धूमः कुतः उत्थितः ॥ १ ॥]

(विरहाग्नि की ज्वाला से जला कोई पथिक जल में डूब कर स्थित है, अन्यथा इस शिशिरकाल में शीतल जल से धूम कैसे उठा । शिशिर काल में जल से निकलते हुए बाष्प को देखकर कवि की यह कल्पना है) पच्चे । अन्नह । जहाँ अनु आदेश नहीं होगा वहाँ 'अन्नह' रूप रहेगा ।

कुतसः कउ कहन्तिहु ॥ ४१६ ॥

अपभ्रंशे कुतस् शब्दस्य कउ कहन्तिहु इत्यादेशौ भवतः ॥ (अपभ्रंश में कुतस् शब्द को 'कउ' और 'कहन्तिहु' आदेश होते हैं) यथा—

महु कन्तहों गुट्ठ-ट्ठिअहो कउ झुम्पडा वलन्ति ।
अह रिउरुहिरें उल्हवइ अह अप्पणें न भन्ति ॥१॥

[मम कान्तस्य गोष्ठस्थितस्य कुतः कुटीरकाणि ज्वलन्ति ।
अथ रिपुरुधिरेण आर्द्रयति (विध्यापयति) अथ आत्मना, न भ्रान्तिः ॥ १ ॥]

(मेरे कंत के गोष्ठ में स्थित रहने पर झोपड़े कहाँ से जल रहे हैं ? या तो शत्रु के रक्त से उसे ठंढा कर देगा या अपने, इसमें कुछ भी भ्रांति नहीं है ।) यहाँ कुतः के स्थान पर 'कउ' आदेश हुआ है ।

कुतः के स्थान पर 'कहन्तिहु' आदेश का उदाहरण—धूमु कहन्तिहु उट्ठिअउ [४१५।१]

ततस्तदोस्तोः ॥ ४१७ ॥

अपभ्रंशे ततस् तदा इत्येतयोस्तो इत्यादेशो भवति ॥ (अपभ्रंश में 'ततस्' और 'तदा' शब्दों के स्थान पर तो आदेश होता है ।)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जइ भग्गा पारक्कडा तो सहि मज्झु पिएण ।
अह भग्गा अम्हहं तणा तो तें मारिअडेण ॥ [३७६।२]

एवं-परं-समं-ध्रुवं-मा-मनाक एम्व-पर-समाणु-ध्रुवु-मं-मणाउं ॥४१८॥ अपभ्रंशे एवमादीनां एम्वादय आदेशा भवन्ति ॥ (अपभ्रंश में 'एवं—आदि के स्थान पर एम्व आदि आदेश होते हैं ।)

एवम् · एम्व ।—

पिय-संगमि कउ निद्दडी पिअहों परोक्खहों केम्व ।
मइँ बिन्नि वि विन्नासिआ निद्द न एम्व न तेम्व ॥१॥

[प्रियसंगमे कथं निद्रा प्रियस्य परोक्षे कथम् ।
मया द्वे अपि विनासिते निद्रा नैवं न तथा ॥१॥]

(प्रियतम के संगम रहने पर निद्रा कैसी, प्रियतम के परोक्ष रहने पर निद्रा कैसी ? मैंने तो दोनों को समाप्त कर दिया, नींद न यों आ रही है और न ओं [त्यों] ॥१॥)

परमः परः । परम के स्थान पर आदेश—'गुणहिं न संपइ कित्ति पर' [३३५।१]

समम: समाणु: । समम् के स्थान पर समाणु आदेश—

कन्तु जु सीहहों उवमिअइ तं महु खण्डिउ माणु ।
सीहु निरक्खय गय हणइ पिउ पय-रक्ख-समाणु ॥२॥

[कान्तः यत् सिंहेन उपमीयते तन्मम खण्डितः मानः ।
सिंहः नीरक्षकान् गजान् हन्ति प्रियः पदरक्षैः समम् ॥२॥]

(मेरे कान्त की उपमा जो सिंह से दी जाती है तो मेरा अभिमान खण्डित हो जाता है । (क्योंकि) सिंह तो बिना रक्षक के हाथियों को मारता है पर प्रिय पदरक्षकों के साथ रहनेवालों को मारता है ।) ॥२॥

ध्रुवमो ध्रुवुः । ध्रुवम् के स्थान पर ध्रुवु—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चञ्चलु जीविउ ध्रुवु मरणु पिअ रूसिज्जइ काइं ।
होसहिँ दिअहा रूसणा दिव्वइँ वरिस—सयाइं ॥३॥

[चञ्चलं जीवितं ध्रुवं मरणं प्रिय रुष्यते कथम् ।
भविष्यन्ति दिवसा रोषयुक्ताः (रूसणा) दिव्यानि वर्षशतानि ।३।]

(जीवन चंचल है, मरना ध्रुव है, हे प्रिय ! क्यों रूठा जाय । रूठने का एक-एक दिन सौ-सौ वर्षों के बराबर होंगे ।) मो मं । मा के स्थान पर 'मं'—'मं धणि करहि विसाउ' [३८५।१] । सूत्र में 'प्रायः' शब्द को ग्रहण किया है तत्सामर्थ्यात्—

माणि पणट्ठइ जइ न तणु तो देसडा चइज्ज ।
मा दुज्जण करपल्लवेँहिँ दंसिज्जन्तु भमिज्ज ॥ ४ ॥
लोणु विलिज्जइ पाणिएँण अरि खल मेह म गज्जु ।
वालिउ गलइ सु झुम्पडा गोरी तिम्मइ अज्जु ॥ ५ ॥
[माने प्रनष्टे यदि न तनुः तत् देशं त्यजेः ।
मा दुर्जनकरपल्लवैः दर्श्यमानः भ्रमेः ॥ ४ ॥]
लवणं विलीयते पानीयेन अरे खल मेघ मा गर्ज ।
ज्वालितं गलति तत्कुटीरकं गौरी तिम्यति अद्य ॥ ५ ॥]

(मान नष्ट होने पर यदि शरीर नहीं नष्ट हुआ तो उस देश को ही छोड़ दे, पर दुर्जनों को कर पल्लवों से दिखाया जाकर मत घूमे ।४।)

(लवण पानी में मिल रहा है, अरे खल मेघ, मत गरज, जलाई हुई वह झोपड़ी जल रही है और गोरी (भींज) तीत रही है ।।५।।)

यहाँ कहीं 'मा' है और कहीं 'म' ही रह गया है । मनाको मणाउं । मनाक् शब्द को 'मणाउं' आदेश होता है

विहवि पणट्ठइ वङ्कुडउ रिद्धिहिँ जण-सामन्नु ।
किं पि मणाउं महु पिअहो ससि अणुहरइ न अन्नु ॥ ६ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[विभवे प्रनष्टे वक्रः ऋद्धौ जनसामान्यः ।
किमपि मनाक् मम प्रियस्य शशी अनुहरति नान्यः ॥ ६ ॥]

(विभव के प्रनष्ट होने पर बाँका और वृद्धि होने पर जन-सामान्य, चन्द्रमा ही मेरे प्रिय का कुछ अनुसरण करता है) ॥ ६ ॥

किलाथवा-दिवा-सह-नहेः किराहवइ दिवे सहुं नाहिं ॥४१६॥

अपभ्रंशे किलादीनां किरादय आदेशा भवन्ति । (अपभ्रंश में 'किल' आदि के स्थान पर 'किर' आदि आदेश होते हैं ।) किलस्य किरः

किल को किर—

किर खाइ न पिअइ न विद्दवइ धम्मि न वेच्चइ रूअडउ ।
इह किवणु न जाणइ जह जमहो खणेँण पहुच्चइ दूअडउ ॥१॥

[किल न खादति न पिबति न विद्रवति धर्मे न व्ययति रूपकम् ।
इह कृपणो न जानाति यथा यमस्य क्षणेन प्रभवति दूतः ॥१॥]

(न तो खाता है, न पीता है, न तो धर्म में ही रुपए खर्च करता है । जैसे (मानो) कृपण यह जानता ही नहीं कि यम का दूत क्षण भर में ही आ पहुँचेगा ।) ॥ १ ॥

अथवोऽहवइ । अथवा को अहवइ आदेश होता है—अहवइ न सुवंसहं एह खोडि' [अथवा न सुवंशानामेष दोषः] (अथवा सुवंशो का यह दोष नहीं है ।) सूत्र में 'प्रायः' का अधिकार आएगा अतः कहीं यह 'अहवइ' आदेश होगा, कहीं नहीं । यथा —

जाइज्जइ तहिं देसडइ लब्भइ पियहो पमाणु ।
जइ आवइ तो आणिअइ अहवा तं जि निवणु ॥ २ ॥

[यायते [गम्यते] तस्मिन् देशे लभ्यते प्रियस्य प्रमाणम् ।
यदि आगच्छति तदा आनीयते अथवा तत्रैव निर्वाणम् ॥ २ ॥]

५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(उस देश में चला जाय जहाँ प्रिय का प्रमाण (पता) मिले, यदि आता है तो लाया जाय अथवा (नहीं आता है तो) वहीं पर निर्वाण प्राप्त कर लिया जाय, (मर जाया जाय) ।। २ ।। ।

दिवो दिवे । दिवः के स्थान पर 'दिवेँ' आदेश होता है—
(दिवेँ दिवेँ) दिवि दिवि गङ्गा ण्हाणु [३६६।१]
सहस्य सहुं । सह को सहुं होता है ।
जउ पवसन्तें सहुँ न गय न मुअ विओएँ तस्सु ।
लज्जिज्जइ संदेसडा दिन्ते हिँ सुहय जणस्सु ॥ ३ ॥
[यत्प्रवसता सह न गता न मृता वियोगेन तस्य ।
लज्ज्यते संदेशान् ददतीभिः (अस्माभिः) सुभगजनस्य ॥]

यदि प्रवास करते हुए (प्रिय) के साथ न गईं और न उसके वियोग के कारण मरीं तो (उस) सुभग जन को संदेश देती हुई हम लजाती हैं] ३ ॥ नहेर्नाहिं । नहि को नाहिं आदेश होता है—

एत्तहेँ मेह पिअन्ति जलु एत्तहेँ वडवानल आवट्टइ ।
पेक्खु गहीरिम सायरहो एक्कवि कणिअ नाहिं ओहट्टइ ॥४॥
[इतः मेघाः पियन्ति जलं इतः वडवानलः आवर्तते ।
प्रेक्षस्व गभीरिमाणं सागरस्य एकापि कणिका न हि अपभ्रश्यते ॥४॥]

(इधर से मेघ जल पी रहे हैं, इधर (उधर) से वडवानल औंट रहा है, सागर की गंभीरता को देखो, एक कणिका भी उसमें कम नहीं होती ।) ॥ ४ ॥

पश्चादेवमेवैवेदानीं-प्रत्युतेतसः पच्छइ एम्वइ जि एम्वहिं—पच्चलिउ एत्तहे ॥ ४२४ ॥

अपभ्रंशे पश्चादादीनां पच्छइ इत्यादय आदेशा भवन्ति ॥
(अपभ्रंश में पश्चात् आदि शब्दों के स्थान में पच्छइ इत्यादि आदेश

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होते हैं) पश्चात् पच्छइ । पश्चात् को पच्छइ, यथा—"पच्छइ होइ विहाणु' [३६२।१]

एवमेवस्य एम्वइ । (एवमेव को एम्वइ आदेश होता है ।) यथा—'एम्वइ सुरउ समत्तु' [३३२।२] एवस्य जिः । एव को जि आदेश होता है, यथा—

जाउ म जन्तउ पल्लवह देक्खउँ कइ पय देइ ।
हिअइ तिरिच्छी हउँ जि पर पिउ डम्बरइँ करेइ ॥१॥
[यातु, मा यान्तं पल्लवत, द्रक्ष्यामि कति पदानि ददाति ।
हृदये तिरश्चीना अहमेव परं प्रियः आडम्बराणि करोति ॥१॥]

(वह प्रिय जाए, जाते हुए उसको मत रोको, देखती हूँ कितने पैर आगे डालता है, उसके हृदय में तो मैं ही टेढ़ी होकर (गड़ी) हूँ, जाने का वह केवल आडम्बर करता है ।)

इदानीम एम्वहिं । इदानीम् को एम्वहिं आदेश होता है—

हरि नच्चाविउ पङ्गणइ विम्हइ पाडिउ लोउ ।
एम्वहिं राह-पओहरहं जं भावइ तं होउ ॥२॥
[हरिः नर्तितः प्राङ्गणे विस्मये पातितः लोकः ।
इदानीं राधापयोधरयोः यत् (प्रति) भाति तद् भवतु ॥२॥]

(हरि प्राङ्गण में नचाया गया, लोक आश्चर्य में डाला गया, इस समय उन राधा के पयोधरों को जो भाए वही हो ।)

प्रत्युतस्य पच्चलिउ । प्रत्युत को पच्चलिउ आदेश होता है—

साव-सलोणी गोरडी नवखी क वि विस-गण्ठि ।
भडु पच्चलिउ सो मरइ जासु न लग्गइ कण्ठि ॥३॥
[सर्वसलावण्या गौरी नवा कापि विषग्रन्थिः ।
भटः प्रत्युत स म्रियते यस्य न लगति कण्ठे ॥३॥]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(सब अङ्गों से सुन्दरी वह गोरी ऐसी है जैसे कोई नई विष की गांठ हो (पर आश्चर्य है कि) जिसके कण्ठ से वह नहीं लगती वही भट मरता है (पीड़ित होता है) ॥३॥

इतस एत्तहे। इतः को एत्तहे आदेश होता है—'एत्तहें मेह पिअन्ति जलु' [४१९।४]

विषण्णोक्त-वर्त्मनो वुन्न-वुत्त-विच्चं ॥४२१॥

अपभ्रंशे विषण्णादीनां वुन्नादय आदेशा भवन्ति ॥ (अपभ्रंश में विषण्ण आदि शब्दों को वुन्न आदि आदेश होते हैं)। विषण्णस्य वुन्नः। विषण्ण को वुन्न आदेश होता है—

मइँ वुत्तउं तुहुँ धुरु धरहि कसरेहिँ विगुत्ताइं।
पइँ विणु धवल न चडइ भरु एम्वइ वुन्नउ काइं ॥१॥

[मया उक्तं, त्वं धुरं धर, गलिवृषभैः (कसर) विनाटिताः।
त्वया विना धवल नारोहति भरः, इदानीं विषण्णः किम् ॥१॥]

(मैंने कहा, तू धुरा को धारण कर मंद (गरियार) बैलों से हम पीडित हैं, हे धवल तेरे विना यह बोझ नहीं चल सकेगा, तू विषण्ण (खेद युक्त) क्यों हो ?)

उक्तस्यवुत्तः। (उक्त के स्थान पर वुत्त आदेश होता है)। यथा—मइं वुत्तउं [४२१।१] ॥ वर्त्मनो विच्चः। (वर्त्मन् को विच्च आदेश हो जाता है।) यथा—जें मणु विच्चि न माइ [३५०।१]

शीघ्रादीनां वहिल्लादयः ॥४२२॥

अपभ्रंशे शीघ्रादि शब्दों को वहिल्ल आदि आदेश होते हैं। शीघ्र को वहिल्ल—

एक्कु कइअह वि न आवही अन्नु वहिल्लउ जाहि।
मइँ मित्तडा प्रमाणिअउ पइँ जेहउ खलु नाहिं ॥१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[एकं कदापि नागच्छसि अन्यत् शीघ्रं यासि।
मया मित्र प्रमाणितः त्वया यादृशः (त्वं यथा) खलः न हि ॥१॥]

(एक तो कभी आते नहीं, दूसरे (आये भी तो) शीघ्र ही जा रहे हो, हे मित्र मैंने प्रमाणित किया है कि तू जैसा है वैसा खल भी नहीं है।)

झकटस्य घङ्घलः। झकट को घङ्घल आदेश होता है—

जिवँ सुपुरिस तिवँ घङ्घलइं जिवँ नइ तिवँ वलणाइं।
जिवँ डोङ्गर तिवँ कोट्टरइं हिआ विसूरहि काइं ॥२॥

[यथा सत्पुरुषाः तथा कलहाः यथा नद्यः तथा वलनानि।
यथा पर्वताः तथा कोटराणि हृदय खिद्यसे किम् ॥२॥]

(जैसे सत्पुरुष हैं वैसे ही झगड़ालू भी, जैसी नदियाँ हैं वैसे ही नदियों का घुमाव भी, जैसे पर्वत हैं वैसी ही कन्दराएँ भी हैं, (तो फिर) हे हृदय, तुम खेद क्या कर रहे हो ?) ॥२॥

अस्पृश्यसंसर्गस्य विट्टालः। अस्पृश्यसंसर्ग के स्थान पर विट्टाल आदेश होता है।

जे छड्डेविणु रयणनिहि अप्पउँ तडि घल्लन्ति।
तहं सङ्खह विट्टालु परु फुक्किज्जन्त भमन्ति ॥३॥

[ये मुक्त्वा रत्ननिधिं आत्मानं तटे क्षिपन्ति।
तेषां शङ्खानां संसर्गः केवलं फुक्कियमाणाः भ्रमन्ति ॥ ३ ॥]

(जो रत्ननिधि (समुद्र) को छोड़ कर अपने को तट पर फेंक देते हैं, उन शंखों का अस्पृश्यसंसर्ग होता है और फूंके जाते हुए इधर उधर घूमते हैं।)

भयस्य द्रवक्कः। (भय के स्थान पर द्रवक्क होता है)—

दिवेंहिँ विढत्तउँ खाहि वढ संचि म एक्कु वि द्रम्मु।
को वि द्रवक्कउ सो पडइ जेण समप्पइ जम्मु ॥ ४ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[दिवसैः अर्जितं खाद मूर्ख संचिनु मा एकमपि द्रम्मम् ।
किमपि भयं तत् पतति येन समाप्यते जन्म ॥ ४ ॥]

(हे मूर्ख, अनेक दिनों में जो संचित किया है उसे खा, एक भी दाम (छदाम) संच कर मत रख, कोई ऐसा भय पड़ेगा जिससे जीवन ही समाप्त हो जायगा) ॥ ४ ॥

आत्मीयस्य अप्पणः (आत्मीय को अप्पण आदेश होता है) फोडेन्ति जे हिअडउं अप्पणउं । [३६७।२] ॥

दृष्टेर्द्रेहिः । (दृष्टि को द्रेहि आदेश होता है)—एकमेक्कउं जइ वि जोएदि हरि सुट्ठु सव्वायरेण ॥

तो वि द्रेहि जहिं कहिं वि राही ॥
को सक्कइ संवरेवि दड्ढ-नयणा नेहिं पलुट्टा ॥ ५ ॥

[एकैकं यद्यपि पश्यति हरिः सुष्ठु सर्वादरेण ।
तथापि दृष्टिः यत्र क्वापि राधा ।
कः शक्नोति संवरीतुं नयने स्नेहेन पर्यस्ते ॥ ५ ॥]

(श्री कृष्ण अलग अलग से यद्यपि प्रत्येक गोपिका का बहुत आदर करते हैं पर दृष्टि सर्वत्र राधा पर ही रहती है (राधा को विशेष मानते हैं)। स्नेह से पूर्ण नयनों को कौन रोक सकता है ? ॥ ५ ॥)

गाढस्य निच्चट्टः । (गाढ को निच्चट्ट आदेश होता है ।)

विहवे कस्सु थिरत्तणउं जोव्वणि कस्सु मरट्टु ।
सो लेखडउ पठाविअइ जो लग्गइ निच्चट्टु ॥ ६ ॥

[विभवे कस्य स्थिरत्वं यौवने कस्य गर्वः ।
स लेखः प्रस्थाप्यते यः लगति गाढम् ॥ ६ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(विभव में स्थिरता किसकी, यौवन में गर्व किसका (विभव में स्थिरता नहीं, यौवन का गर्व नहीं) तो वह लेख भेजा जा रहा है जो गाढ रूप से लगे ॥ ६ ॥)

साधारणस्य सड्ढलः । (साधारण के स्थान पर सड्ढल आदेश होता है ।

कहिँ ससहुरु कहिँ मयरहरु कहिँ बरिहिणु कहिँ मेहु ।
दूर ठिआहँ वि सज्जणहं होइ असड्ढलु नेह ॥ ७ ॥

[कुत्र शशधरः कुत्र मकरधरः कुत्र बर्हीं कुत्र मेघः ।
दूरस्थितानामपि सज्जनानां भवति असाधरणः स्नेहः ॥ ७ ॥]

(कहाँ चन्द्रमा और कहाँ समुद्र, (दोनों में महान् अन्तर है । कहाँ मयूर हैं, कहाँ मेघ, (सत्य है) दूर रहनेवाले सज्जनों का आसाधारण स्नेह होता है) ॥ ७ ॥

कौतुकस्य कोड्डः । (कौतुक को कोड्ड या (कुड्ड आदेश होता है)।
कुञ्जरु अन्नहँ तरुअ-रहं कुड्डे ँण घल्लइ हत्थु ।
मणु पुणु एक्कहिँ सल्लइहिँ जइ पुच्छह परमत्थु ॥ ८ ॥

[कुञ्जरः अन्येपु तरुवरेपु कौतुकेन घर्षति हस्तम् ।
मनः पुनः एकस्यां सल्लक्यां यदि पृच्छथ परमार्थम् ॥ ८ ॥]

(कुञ्जर अन्य तरुवरों पर कौतुक से (खेल के लिए) अपना हस्त (सूंढ) रगड़ता है, परमार्थ पूछो तो (सच पूछो तो) उसका मन तो एक सल्लकी के पेंड़ में ही लगा रहता है) ।

क्रीडायाः खेड्डः । (क्रीडा को खेड्ड आदेश होता है) ।
खेडयं कयमम्हेहिं निच्छयं किं पयम्पह ।
अणुरत्ताउ भत्ताउ अम्हे मा चय सामिअ ॥ ९ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[क्रीडा कृता अस्माभिः निश्चयं किं प्रजल्पत ।
अनुरक्ताः भक्ताः अस्मान् मा त्यज स्वामिन् ॥ ६ ॥]

(हम लोगों ने खेल किया, निश्चय क्या है सो कहिए, हे स्वामिन्, हम अनुरक्त अपने भक्तों को मत छोड़िए) ॥ ६ ॥

रम्यस्य रवण्णः) रम्य को रवण्ण आदेश होता है)—
सरिहिँ न सरेहिँ न सरवरेँहि न वि उज्जण वणेहिं ।
देस रवण्णा होन्ति वढ निवसन्तेँहिँ सुअणेहिं ॥ १० ॥

[सरिद्भिः न सरोभिः न सरोवरैः नापि उद्यानवनैः ।
देशाः रम्याः भवन्ति मूर्ख निवसद्भिः सुजनैः ॥ १० ॥]

(रे मूर्ख, न सरिताओं से, न सरों से, न तो उद्यान और वनों से ही देश रमणीक होते हैं (अपितु, सुजनों के निवास से (देश रम्य) होते हैं ।) ॥ १० ॥

अद्भुतस्य ढक्करिः (अद्भुत को ढक्करि आदेश होता है ।)
हिअडा पइं ऍहु वोल्लिअओ महु अग्गइ सयवार ।
फुट्टिसु पिएँ पवसन्ति हउँ भण्डय ढक्करि-सार ॥ ११ ॥

[हृदय त्वया एतदुक्तं मम अग्रतः शतवारम् ।
स्फुटिष्यामि प्रियेण प्रवसता (सह) अहं भण्ड अद्भुतसार ॥११॥]

(हृदय ! तू ने मेरे आगे सैकड़ों बार यह कहा था कि प्रिय के प्रवास करते समय मैं फूट जाऊँगा, रे भाण्ड, रे अद्भुत सार !! ११॥)

हे सखीत्यस्य हेल्लिः ('हे सखि' को 'हेल्लि' आदेश होता है—
हेल्लि म झङ्खहि आलु [३७९ । १]

पृथक्पृथगित्यस्य जुअंजुअः । (पृथक् पृथक् को जुअंजुअ आदेश होता है ।)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक्क कुडुल्ली पञ्चहिँ रुद्धी तहँ पञ्चहँ वि जुअंजुअ बुद्धी ।
बहिणुएँ तं घरु कहि किँव नन्दउ जेत्थु कुडुम्बउँ अप्पण छन्दउँ ॥१२॥

[एका कुटी पञ्चभिः रुद्धा तेषां पञ्चानामपि पृथक् पृथक् बुद्धिः ।
भगिनि तद् गृहं कथय कथं नन्दतु यत्र कुटुम्बं आत्मछन्दकम् ॥१२॥]

(एक (शरीररूपी) कुटी है, (वह भी) पाँच (इन्द्रियों) के द्वारा रुद्ध (अधिकृत) है, उन पाँचों की भी अलग अलग मति है, तो हे वहिनि बता कैसे वह गृह सानन्द रहेगा जहाँ कुटुम्ब भर अपनी अपनी इच्छा से चलने वाला है ॥ १२ ॥

मूढस्य नालिअ-वढौ (मूढ को नालिअ और वढ दो आदेश होते हैं)–
मूढ = नालिअ का उदाहरण—

जो पुणु मणि जि खसफसिहूअउ चिन्तइ देइ न दम्मु न रुअउ ।
रइ-वस-भमिरु करग्गुल्लालिउ घरहिं जि कोन्तु गुणइ सो नालिउ ॥१३॥

[यः पुनः मनस्येव व्याकुलीभूतः चिन्तयति ददाति न द्रम्मं न रूपकम्
रतिवशभ्रमणशीलः कराग्रोल्लालितं गृहे एव कुन्तं गणयति स मूढः ॥१३॥]

(जो मन में ही व्याकुल होकर चिन्ता करता है पर एक भी दाम या रुपया देता नहीं, ऐसा रति के वश भ्रमणशील तथा घर में ही भाला को हाथ में लेकर अंगुलियों से उसे (भाले) को नचानेवाला [व्यक्ति] मूर्ख है। मूढः = वढ--देवेँ हिँ विढत्तउँ खाहि वढ [४२२।४] ॥ नवस्य नवखः॥ (नव को नवख आदेश होता है)-नवखी क वि विसगण्ठि [४२०।३]

अवस्कन्दस्य दडवडः ॥ (अवस्कन्द के स्थान पर दडवड आदेश होता है)।

चलेँहिँ चलन्तेँहिँ लोअणेँहिँ जे तइँ दिट्ठा बालि ।
तहिँ मयरद्धय दडवडउ पडइ अपूरइ कालि ॥ १४ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[चलाभ्यां वलमानाभ्यां लोचनाभ्यां ये त्वया दृष्टाः बाले ।
तेषु मकरध्वजावस्कन्दः पतति अपूर्णे काले ॥ १४ ॥]

(हे बाले जो तुम्हारे घूमने वाले चंचल नेत्रों के द्वारा देखे गए (जाते हैं) कि उनपर असमय ही मकरध्वज (कामदेव) का आक्रमण हो जाता है) ॥१४॥

यदेश्छुडुः । (यदि के स्थान पर छुडु होता है)—छुडु अग्घइ ववसाउ [३८५।१] ॥

सम्बन्धिनः केरतणौ । (सम्बन्धी के स्थान पर केर और तण आदेश होते हैं)—केर का उदाहरण—

गयउ सु केसरि पिअहु जलु निच्चिन्तइँ हरिणाइं ।
जसु केरएँ हुंकारडएं मुहहुँ पडन्ति तृणाइं ॥ १५ ॥
[गतः स केसरी पिबत जलं निश्चितं हरिणाः ।
यस्य संबन्धिना हुंकारेण मुखेभ्यः पतन्ति तृणानि ॥ १५ ॥]

(हे हरिणो, वह केसरी (सिंह) चला गया; अब निश्चित रूप से (अच्छी तरह से) जल पीओ, जिसके हुंकार से मुखों से तृण गिर पड़ते थे ।) ॥ १५ ॥

तण का उदाहरण—अह भग्गा अम्हहं तणा [३७६।२] ॥
मा भैषीरित्यस्य मब्भीसेति स्त्रीलिङ्गम् । 'मा भैषीः' के स्थानपर 'मब्भीसा' यह स्त्रीलिंग आदेश होता है—

सत्थावत्थहँ आलवणु साहु वि लोउ करेइ ।
आदन्नहँ मब्भीसडी जो सज्जणु सो देइ ॥ १६ ॥
[स्वस्थावस्थानामालपनं सर्वोऽपि लोकः करोति ।
आर्तानां मा भैषीः इति यः सुजनः स ददाति ॥ १६ ॥]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(स्वस्थावस्थावालों के साथ आलपन (वार्तालाप) तो सभी करते हैं, पर आर्तों को (पीड़ित लोगों को) 'मा भैषीः' (मत डरोका) (अभयदान) जो सुजन है वही देता है ।) ॥ १६ ॥ यहाँ 'मब्भीसा' स्त्रीलिंग होने के कारण उसमें स्वार्थ डी प्रत्यय लग गया है और 'मब्भीसडी' बना है ॥

यद्यद्दृष्टं तत्तदित्यस्य जाइट्ठिआ । (यद् यद् दृष्टं तत् तद् के स्थान पर 'जाइट्ठिआ' आदेश होता है)—

जइ रच्चसि जाइट्ठिअए हिअडा मुद्ध-सहाव ।
लोहें फुट्टणएण जिवँ घणा सहेसइ ताव ॥ १७ ॥

[यदि रज्यसे यद्यद् दृष्टं तस्मिन् हृदय मुग्धस्वभाव ।
लोहेन स्फुटता यथा घनः (तापः) सहिष्यते तावत् ॥ १७ ॥]

(हे मुग्ध स्वभाव वाले हृदय, जिसे जिसे देखते हो उस उस पर अनुरक्त हो जाते तो फुटने वाले लोहे के समान कठोर ताप सहो ॥१७॥)

हुहुरु-घुग्घादयः शब्दचेष्टानुकरणयोः ॥ ४२३ ॥

(अपभ्रंशे हुहुर्वादयः शब्दानुकरणे घुग्घादश्चेष्टानुकरणे यथासंख्यं प्रयोक्तव्याः ॥) (अपभ्रंश में 'हुहुरु' आदि शब्दानुकरण के लिए तथा 'घुग्घु' आदि चेष्टानुकरण के लिए यथा संख्य (क्रमशः) आदेश होते हैं)—हुहुरु = शब्दानुकरण के लिए—

मइँ जाणिउँ बुड्डीसु हउँ पेम्मद्रहि हुहुरु त्ति ।
नवरि अचिन्तिय संपडिय विप्पियनाव झड त्ति ॥ १ ॥

[मया ज्ञातं मंक्ष्यामि अहं प्रेमहृदे हुहुरुशब्दं कृत्वा ।
केवलं अचिन्तता संपतिता विप्रयनौः झटिति ॥ १ ॥]

(मैंने समझा था कि प्रेमहृद में हुहुरुशब्द करके मैं डूब जाऊँगी पर विना सोचे ही (अचानक) वियोग की नौका प्राप्त हो गई) ॥ १ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आदि ग्रहणात्। (सूत्र में हुहुरु के बाद आदि शब्द का ग्रहण किया गया है तत्सामर्थ्यात्—

खज्जइ नउ कसरक्केहिं पिज्जइ नउ घुण्टेहिं।
एम्वइ होइ सुहच्छडी पिएँ दिट्ठें नयणेहिं॥ २॥ इत्यादि।

[खाद्यते न कसरत्कशब्दं कृत्वा, पीयते न घुट् शब्दं कृत्वा।
एवमपि भवति सुखासिका प्रिये दृष्टे नयनाभ्याम्॥ २॥]

(न तो कसर कसर करके खाया जाता है, न घूटों से पीया जाता है। योंही सुख की स्थिति रहती है, आँखों से प्रिय के देखे जाने पर॥ २॥ आदि ग्रहण के कारण 'कसरक' भी शब्दानुकरण के लिए आदेश हुआ है। घुग्घु = चेष्टानुकरण —

अज्ज वि नाहु महुज्जि घरि सिद्धत्था वन्देइ।
ताउँ जि विरहु गवक्खेंहिं मक्कड-घुग्घिउ देइ॥ ३॥

[अद्यापि नाथः ममैव गृहे सिद्धार्थान् वन्दते।
तावदेव विरहः गवाक्षेषु मर्कट चेष्टां ददाति॥ २॥]

(अभी नाथ मेरे ही घर सिद्धार्थ (जैन मूर्ति) की वन्दना करते हैं। (बाहर जाने के लिए)। इतने में ही विरह झरोखे पर बंदरघुड़की दे रहा है)। सूत्र में 'घुग्घु, के बाद आदि शब्द का ग्रहण किया है अतः तत्सामर्थ्यात्—

सिरि जर-खण्डी लोअडी गलिमणिअडा न वीस।
तो वि गोट्ठडा कराविआ मुद्धएँ उट्ठ-बईस॥ ४॥ इत्यादि।

[शिरसि जराखण्डिता लोमपुटी (कम्बलं) गले मणयः न विंशतिः।
तथापि गोष्ठस्थाः कारिताः मुग्धया उत्थापनोपवसनम्॥ ४॥]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(शिर पर फटी पुरानी कमली की टुकड़ी भी नहीं है, गले में वीस मनियाँ भी नहीं तो भी मुग्धा ने गोष्ठी में बैठे लोगों को उठक बैठक करा दिया)॥ ४॥

घइमादयोऽनर्थकाः ॥ ४२४ ॥

अपभ्रंशे घइमित्यादयो निपाता अनर्थकाः प्रयुज्यन्ते।
(अपभ्रंश में 'घइम' इत्यादि अनर्थक शब्दों का निपात होता है।)

अम्मडि पच्छायावडा पिउ कलहियउ विआलि।
घइं विवरीरी बुद्धडी होइ विणासहो॑ कालि ॥ १ ॥

[अम्ब पश्चात्तापः प्रियः कलहायितः विकाले।
(नूनं) विपरीता बुद्धिः भवति विनाशस्य काले ॥ २ ॥]

(री अम्मा, पश्चात्ताप हो रहा है कि प्रिय से विकाल में (सायं समय) झगड़ा हुआ, निश्चय ही विनाश काल में विपरीत बुद्धि होती है) ॥ १ ॥

सूत्र में 'घइम्' के बाद 'आदि' ग्रहण किया गया है तत्सामर्थ्यात् 'खाइं' इत्यादि भी होगा।

तादर्थ्ये केहिं-तेहिं-रेसि-रेसिं-तणेणाः ॥ ४२५ ॥

अपभ्रंशे तादर्थ्ये द्योत्ये केहिं, तेहिं, रेसि, रेसिं, तणेण इत्येते पञ्च निपाताः प्रयोक्तव्याः॥ (अपभ्रंश में तादर्थ्य (चतुर्थ्यर्थ) जहाँ पर कहना हो वहाँ केहिं, तेहिं, रेसि, रेसिं और तणेण ये पाँच निपात होते हैं।) यथा—

ढोल्ला एँह परिहासडी अइ भण कवणहिँ देसि।
हउँ झिज्जउँ तउ केहिँ पिअ तुहुँ पुणु अन्नहि रेसि।

[विट एष परिहासः अयि भण कस्मिन् देशे।
अहं क्षीणा तव कृते प्रिय त्वं पुनः अन्यस्याः कृते ॥१॥]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे दूल्हा, बताओ यह परिहास किस देश में (होता है।) हे प्रिय मैं तुम्हारे लिए क्षीण होती हूँ और तुम किसी दूसरी के लिए (क्षीण होते हो) ॥ १ ॥]

एवं तेहिं रेसिमावुदाहार्यौ। (इसी प्रकार तेहिं और 'रेसिं' का उदाहरण देना चाहिए। ('तेहिँ पिअ' और 'अन्नहिं रेसिं')

'तणेण' का उदाहरण—वड्डुत्तणहो तणेण ॥ [३६६।१]

पुनर्विनः स्वार्थे डुः ॥ ४२६ ॥

अपभ्रंशे पुनर्विना इत्येताभ्यां परः स्वार्थे डुः प्रत्ययो भवति ॥ (अपभ्रंश में पुनः और विना शब्द से परे स्वार्थ में डु प्रत्यय होता है) ॥ यथा—

सुमरिज्जइ तं वल्लहउँ जं वीसरइ मणाउँ।
जहिँ पुणु सुमरणु जाउं गउ तहों नेहहों कइँ नाउँ ॥१॥
[स्मर्यते तद् वल्लभं यद् विस्मर्यते मनाक्।
यस्य पुनः स्मरणं जातं गतं तस्य स्नेहस्य किं नाम ॥१॥]

(उस वल्लभ का स्मरण किया जाता है जो थोड़ा भूलता है पर जिसने स्मरण करना ही छोड़ दिया उसके प्रेम का क्या कहना (वह प्रेम क्या करेगा ?) ॥ १ ॥

विना+डु का उदाहरण विणु जुज्झें न वलाहुं ॥ [३८६।१]

अवश्यमो डें-डौ ॥ ४२७ ॥

अपभ्रंशे ऽवश्यमः स्वार्थे डें ड इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः ॥ (अपभ्रंश में 'अवश्यम् से स्वार्थ में 'डें' और 'ड' प्रत्यय होते हैं।) 'डें' का उदाहरण —

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिब्भिन्दिउ नायगु वसि करहु जसु अधिन्नइँ अन्नइं ।
मूलि विणट्ठइ तुंबिणिहे अवसें सुक्कहिँ पण्णइं ॥ १ ॥

[जिह्वेन्द्रियं नायकं वशे कुरुत यस्य अधीनानि अन्यानि ।
मूले विनष्टे तुम्बिन्याः अवश्यं शुष्यन्ति पर्णानि ॥ १ ॥]

(जिह्वेन्द्रिय जो सब में प्रधान है, उसे वश में करो जिसके अधीन में सभी अन्य इन्द्रियाँ हैं, मूल के नष्ट हो जाने पर तुम्बिनी के पत्ते अवश्य सूख जाते हैं ।) ॥ १ ॥

'ड' प्रत्यय का उदाहरण—'अवस न सुअहिँ सुहच्छिअहिं ।
[३७६।२२]

एकशसो डिः ॥ ४२८ ॥

अपभ्रंशे एकशश्शब्दात् स्वार्थे डि र्भवति ॥ (अपभ्रंश में एकशः शब्द से स्वार्थ में 'डि' प्रत्यय होता है) । यथा—

एक्कसि सील- कलंकिअहं देज्जहिँ पच्छित्ताइं ।
जो पुणु खण्डइ अणुदिअहु तसु पच्छित्तें काइं ॥ १ ॥

[एकशः शीलकलङ्कितानां दीयन्ते प्रायश्चित्तानि ।
यः पुनः खण्डयति अनुदिवसं तस्य प्रायश्चित्तेन किम् ॥ १ ॥]

(शील कलंकित करने वालों को एक बार प्रायश्चित दिये जाते हैं जो प्रत्येक दिन खण्डित करता है उसे प्रायश्चित्त से क्या ?) ॥ १ ॥

अ-डड-डुल्लाः स्वार्थिक-क लुक् च ॥ ४२९ ॥

अपभ्रंशे नाम्नः परतः स्वार्थे अ, डड, डुल्ल इत्येते त्रयः प्रत्ययाः भवन्ति तत्संनियोगे स्वार्थे क प्रत्ययस्य लोपश्च ॥ (अपभ्रंश में संज्ञा शब्दों से परे स्वार्थ में अ, डड, डुल्ल ये तीन प्रत्यय होते हैं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उनके संनियोग होने से स्वार्थ में क प्रत्यय का लोप भी होता ।) यथा–
अ प्रत्यय का उदाहरण—

विरहाणलजाल–करालिअउ पहिउ पन्थि जं दिट्ठउ ।
तं मेलवि सव्वहिँ पन्थिअहिं सो जि किअउ अग्गिट्ठउ ॥ १ ॥

[विरहानल ज्वाला करालितः पथिकः पथि यद् दृष्टः ।
तद् मिलित्वा सर्वैः पथिकैः स एव कृतः अग्निष्ठः ॥ १ ॥]

(विरहानल की ज्वाला से जला जो पथिक दिखाई पड़ा कि सभी पथिकों ने मिलकर उसी को अग्निष्ठ (आग में स्थित-जला दिया) कर दिया । डड प्रत्यय का उदाहरण–महु कन्तहों वे दोसडा [३७९।१]

डुल्ल प्रत्यय का उदाहरण—एक कुडुल्ली पञ्चहिँ रुद्धी [४२२।१२]

योगजाश्चैषाम् ॥ ४३० ॥

अपभ्रंशे अ ड डडुल्लानां योगभेदेभ्यो ये जायन्ते डडअ इत्यादयः प्रत्ययास्तेऽपि स्वार्थे प्रायो भवन्ति ॥ (अपभ्रंश में अ डडडुल्ल में योग विभाग करने पर डडअ आदि जितने प्रत्यय होंगे वे भी स्वार्थ में होते हैं) डडअ फोडेंन्ति जे हिअडउं अप्पणउं [३५०।२] अत्र किसलय [१।२६९] इत्यादिना यलुक् । यहाँ १।२६९ सूत्र से 'य' का लोप हुआ है ।

डुल्लअ—चूडुल्लउ चुन्नी होइसइ [३९५।२]॥

डुल्लडड—

सामि-पसाउ सलज्जु पिउ सीमा संधिहिँ वासु ।
पेक्खिवि बाहु–बलुल्लडा धण मेल्लइ नीसासु ॥ १ ॥

[स्वामि प्रसादं सलज्जं प्रियं सीमासन्धौ वासम् ।
प्रेक्ष्य बाहुवलं धन्या मुञ्चति निःश्वासम् ॥ १ ॥]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(सीमासन्धि (वयः सन्धि) में रहना स्वामी का प्रिय प्रसाद है। (इस प्रसाद को प्राप्त कर) धन्या लज्जा के साथ प्रिय के भुजबल को स्मरण कर निःश्वास छोड़ती है ॥ १ ॥)

अत्रामि स्यादौ दीर्घ-ह्रस्वौ [४।३३०] इति दीर्घः। (यहाँ 'सामि' में सामी न होकर [४।३३०] सूत्र से दीर्घ का ह्रस्व हो गया है।)

एवं बाहुबलुल्लडउ। अत्र त्रयाणां योगः। (इसी प्रकार बाहुबलु-ल्लडउ भी बनता है। यहाँ पर तीनों प्रत्ययों का योग है।

स्त्रियां तदन्ताड्डीः ॥ ४३१ ॥

अपभ्रंशे स्त्रियां वर्तमानेभ्यः प्राक्तनसूत्रद्वयोक्तप्रत्ययान्तेभ्यो डीः प्रत्ययो भवति ॥ (अपभ्रंश में वर्तमान पूर्वोक्त दो सूत्रों में कहे गए प्रत्ययान्त वाले शब्दों में डी प्रत्यय लगता है।) यथा—

पहिआ दिट्ठी गोरडी दिट्ठी मग्गु निअन्त।
अंसूसासेंहिँ कञ्चुआ तिंतुव्वाण करन्त ॥ १ ॥

[पथिक दृष्टा गौरी ? दृष्टा मार्गमवलोकयन्ती।
अश्रूच्छ्वासैः कञ्चुकं तिमितोद्वानं (आर्द्रशुष्कं) कुर्वंती ॥]

("हे पथिक, गोरी तुम्हारे द्वारा देखी गई ?" मार्ग देखती हुई और आँसुओं तथा उच्छ्वासों से कञ्चुक को गीला करती और सुखाती हुई देखी गई ॥ १ ॥) इसी प्रकार—एक कुडुल्ली पञ्चहिँ रुद्धी [४२२ ।१२]

आन्तान्ताड्डाः ॥ ४३२ ॥

अपभ्रंशे स्त्रियां वर्तमानादप्रत्ययान्तप्रत्ययान्तात् डा प्रत्ययो भवति। ड्यपवादः। (अपभ्रंश में स्त्रीलिंग में वर्तमान अप्रत्ययान्त या प्रत्ययान्त से डा प्रत्यय होता है। यह डी का अपवादक है।) यथा—

६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पिउ आइउ सुअ वत्तडी झुणि कन्नडइ पइट्ठ।
तहों विरहहों नासन्तअहों धूलडिआ वि न दिट्ठ ॥१॥

[प्रियः आयातः, श्रुता वार्ता, ध्वनिः कर्णे प्रविष्टः ।
तस्य विरहस्य नश्यतः धूलिरपि न दृष्टा ॥ १ ॥]

('प्रिय आया', यह वार्ता सुनी, ध्वनि कान में प्रविष्ट हुई, उसके नष्ट होते हुए विरह की धूल भी न देखी गई ॥ १ ॥)

अस्येदे ॥ ४३२ ॥

अपभ्रंशे स्त्रियां वर्तमानस्य नाम्नो योकारस्तस्य आकारे प्रत्यये परे इकारो भवति ॥ (अपभ्रंश में स्त्रिलिंग में वर्तमान जो संज्ञा शब्दों का अकार उसको आकार प्रत्यय परे रहते इकार होता है ।) यथा—धूलडिआ वि न दिट्ठ [४३२।१] स्त्रियामित्येव । स्त्रीलिंग में ही यह इकार होता है—झुणि कन्नडइ पइट्ठ [४३२।१] कन्नडइ में स्त्रीलिंग न होने के कारण कन्नडिइ या 'कन्नडिअ' नहीं हुआ ।

युष्मदादेरीयस्य डारः ॥ ४३४ ॥

अपभ्रंशे युष्मदादिभ्यः परस्य ईयप्रत्ययस्य डार इत्यादेशो भवदि ॥

(अपभ्रंश में युष्मद् आदि शब्दों से परे ईय प्रत्यय को डार आदेश होता है ।)

यथा—संदेसें काइँ तुहारेण जं सङ्गहों न मिलिज्जइ ।
सुइणन्तरि पिएँ पाणिएँण पिअ पिआस किं छिज्जइ ॥ १ ॥

[संदेशेन किं युष्मदीयेन यत्संगाय न मिल्यते ।
स्वप्नान्तरे पीतेन पानीयेन प्रिय पिपासा किं छिद्यते ॥ १ ॥

(आपके संदेश से क्या जब आपका संग नहीं मिलता । हे प्रिय, सपनों के पिये जल से क्या प्यास मिट सकती है ?) अस्मद् शब्द से—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिक्खि अम्हारा कन्तु [३४५।१] इसी प्रकार से वहिणि महारा कन्तु [३५१।१] ॥

अतोर्डेत्तुलः ॥ ४३५ ॥

अपभ्रंशे इदं किं यत्तदेतद्भ्यः परस्य अतोः प्रत्ययस्य डेत्तुल इत्यादेशो भवति ॥ (अपभ्रंश में इदं, किं, यत्, तत्, इनसे परे अतुस् प्रत्यय को (पंचमी एकवचन में) डेत्तुल आदेश होता है ।) इदम्—एत्तुलो । [अतः] । किंम्—केत्तुलो [कुतः] । यत्—जेत्तुलो [यतः] । तत्—तेत्तुलो [ततः] । एत्तुलो [एतत्] ।

त्रस्य डेत्तहे ॥४३६॥

अपभ्रंशे सर्वादेः सप्तम्यन्तात्परस्य त्रप्रत्ययस्य डेत्तहे इत्या देशो भवति ॥ (अपभ्रंश में सर्व आदि सप्तम्यन्त शब्दों से परे त्र प्रत्यय को डेत्तहे आदेश होता है ।) यथा—

एत्तहें तेत्तहें वारि घरि लच्छि विसण्ठुल धाइ ।
पिअ-पब्भट्ठ व गोरडी निच्चल कहिँ वि न ठाइ ॥ १ ॥

[अत्र तत्र द्वारे गृहे लक्ष्मीः विसंष्ठुला भवति ।
प्रियप्रभ्रष्टेव गौरी निश्चला क्वापि न तिष्ठति ॥ १ ॥

(यहाँ पर, वहाँ पर, दरवाजे पर, घर में, लक्ष्मी विसंष्ठुल (अस्थिर) होकर दौड़ती है । प्रियतम से प्रभ्रष्ट [वियुक्त] गोरी के समान निश्चल रूप से कहीं नहीं ठहरती ।)

त्व-तलोः प्पणः ॥४३७॥

अपभ्रंशे त्व तलोः प्रत्ययोः प्पण इत्यादेशो भवति ॥ (अपभ्रंश में त्व और तल प्रत्ययों को 'प्पण' आदेश होता है ।) यथा—वड्डप्पणु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परि पाविअइ [३६६।१] ।। प्रायोऽधिकारात् । प्रायः शब्द का अधिकार चला आ रहा है अतः वड्डुत्तणहों तणेण [३६६।१] भी रूप मिलता है,कहीं त्पण आदेश नहीं भी होता है।

तव्यस्य इएव्वउं एव्वउं एवा ।।४३८।।

अपभ्रंशे तव्य प्रत्ययस्य इएव्वउं एव्वउं एवा इत्येते त्रय आदेशा भवन्ति ।। (अपभ्रंश में तव्य प्रत्यय को इएव्वउं, एव्वउं और एवा ये तीन आदेश होते हैं।) यथा—इएव्वउँ—

एँउँ गृण्हेप्पिणु ध्रु मइं जइ प्रिउ उव्वारिज्जइ ।
महु करिएव्वउँ किं पि णवि मरिएव्वउँ पर देज्जइ ॥१॥

[एतद्‌गृहीत्वा यन्मया यदि प्रियः उद्वार्यते (त्यज्यते) ।
मम कर्तव्यं किमपि नापि मर्तव्यं परं दीयते ॥१॥

टीकाकारों का कथन है कि कोई सिद्ध पुरुष सिद्धि प्राप्त करने के लिए किसी नायिका को धन देकर उसके पति को माँगता है। उस समय नायिका उत्तर देती है—"मैं इस (धन) को ग्रहण कर यदि प्रिय को छोड़ देती हूँ तो मेरा मरना ही कर्त्तव्य रह जाता है और कुछ भी नहीं।") ऐसे ही एव्वउँ—

देसुच्चाडणु सिहि-कढणु घण-कुट्टणु जं लोइ ।
मंजिट्ठएँ अइरत्तिए सव्वु सहेव्वउँ होइ ।। २ ।।

[देशोच्चाटनं शिखिक्वथनं घन कुट्टनं यद् लोके ।
मञ्जिष्ठया अतिरक्तया सर्वं सोढव्यं भवति ॥२॥

(देश से उच्चाटन—किसी प्रदेश से उखाड़ा जाना—किसी देश से निकाला जाना, अग्नि से औंटा जाना, घन से कूटा जाना जो कुछ लोक में होता है, वह सब अति अनुरक्त मंजिष्ठ के द्वारा ही सहने योग्य होता है (उसे मंजिष्ठ ही सहन कर पाता है) ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एवा—सोएवा पर वारिआ पुप्फवईहिँ समाणु ।
जग्गेवा पुणु को धरइ जइ सो वेउ पमाणु ॥३॥
[स्वपितव्यं परं वारितं पुष्पवतीभिः समानम् ।
जागरितव्यं पुनः कः धरति यदि स वेदः प्रमाणम् ॥३॥]

इसका अर्थ अश्लील है ।

क्त्व इ-इउ-इवि-अवयः ॥४३९॥

अपभ्रंशे क्त्वा प्रत्ययस्य इ, इउ इवि अवि इत्येते चत्वार आदेशा भवन्ति ॥ (अपभ्रंश में क्त्वा प्रत्यय के स्थान पर इ, इउ, इवि और अवि ये चार आदेश होते हैं ।)

इ का उदाहरण—

हिअडा जइ वेरिअ घणा तो किं अब्भि चडाहुं ।
अम्हाहिं वे हत्थडा जइ पुणु मारि मराहुं ॥१॥
[हृदय यदि वैरिणो घनाः तत् किं अभ्रे (आकाशे) आरोहामः ।
अस्माकं द्वौ हस्तौ यदि पुनः मारयित्वा म्रियामहे ॥१॥]

(हे हृदय, यदि वैरी घने हैं तो हम आकाश पर चढ़ेंगे क्या ? हमारे भी दो हाथ हैं, तो फिर मार कर ही मरेंगे ॥१॥ इउ का उदाहरण—गय-घड भज्जिउजन्ति [३९५।५] ॥ इवि का उदाहरण—

रक्खइ सा विसहारिणी बे कर चुम्बिवि जीउ ।
पडिबिम्बिअ-मुंजालु जलु जेहिँ अडोहिउ पीउ ॥२॥
[रक्षति सा विषहारिणी द्वौ करौ चुम्बित्वा जीवम् ।
प्रतिबिम्बित-मुञ्जालं जलं याभ्यामनवगाहितं पीतम् ॥२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(वह विष-[जल] हारिणी—पनिहारिनि दोनों हाथों को चूम कर जीव की रक्षा करती है, जिन दोनों हाथों से मुंज के प्रतिबिम्ब पड़ने वाले जल को पिया था ॥२॥)

अवि का उदाहरण—

बाह विछोडवि जाहि तुहुँ हउ तेवँइ को दोसु ।
हिअयट्ठिउ जइ नीसरहि जाणउँ मुञ्ज सरोसु ॥३॥

[बाहू विछुव्य याहि त्वं, भवतु तथा को दोषः ।
हृदयस्थितः यदि निःसरसि जानामि मुञ्जः सरोषः ॥३॥

(हाथों को छोड़ कर तू जा, ऐसा ही हो कोई दोष नहीं, हृदय में स्थिति तुम यदि निकल जाओगे तो समझूँगा कि मुञ्ज सरोष है ॥३॥)

एप्प्येप्पिण्वेव्येविणवः ॥४४०॥

अपभ्रंशे क्त्वा प्रत्ययस्य एप्पि एप्पिणु एवि एविणु इत्येते चत्वार आदेशा भवन्ति ॥ (अपभ्रंश में क्त्वा प्रत्यय को एप्पि, एप्पिणु, एवि, एविणु ये चार आदेश होते हैं ।) यथा—

जेप्पि असेसु कसाय-वलु देप्पिणु अभउ जयस्सु ।
लेवि महव्वय सिवु लहहिं झाएविणु तत्तस्सु ॥१॥

[जित्वा अशेषं कषायवलं दत्वा अभयं जगतः ।
लात्वा महाव्रतं शिव लभन्ते ध्यात्वा तत्त्वम् ॥१॥]

(निःशेष कषाय (पाप) वल (सेना) को जीत कर, संसार को अभय देकर, महाव्रत को धारण करके तत्त्व का ध्यान करके शिव को प्राप्त करते हैं ॥१॥)

पृथग्योग उत्तरार्थः ॥ ४३९ सूत्र और ४४० दोनों क्त्वा के स्थान पर ही उपर्युक्त प्रत्यय आदेश करते हैं तो दोनों सूत्रों को एक में ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रखना चाहिए था, पर ऐसा इसलिए नहीं किया गया कि ४४० सूत्र में उक्त प्रत्यय, ४४१ में जो आगे आएँगे, उन प्रत्ययों के साथ भी होंगे अर्थात् क्त्वा के अतिरिक्त अन्य प्रत्यय के स्थान पर भी एप्पि इत्यादि चार प्रत्यय होंगे। अतः उन चार प्रत्ययों को अलग करके एक सूत्र बना दिया गया है।

तुम एवमणाणहमणहिं च ॥ ४४१ ॥

अपभ्रंशे तुमः प्रत्ययस्य एवं, अणहं, अणहिं इत्येते चत्वारः, चकारात् एप्पि, एप्पिणु, एवि, एविणु इत्येते, एवं चाष्टावादेशा भवन्ति ॥ (अपभ्रंश में तुमुन् प्रत्यय के स्थान पर एवं, अण, अणहं अणहिं ये चार तथा सूत्र में चकार ग्रहण किया गया है। तत्सामर्थ्यात् ४४० सूत्र के भी एप्पि, एप्पिणु, एवि, एविणु, ये चार प्रत्यय कुल मिलाकर आठ प्रत्यय आदेश होते हैं।) यथा—

देवं दुक्करु निअय धणु करण न तउ पडिहाइ।
एम्वइ सुहु भुञ्जणहँ मणु पर भुञ्जणहिँ न जाइ॥ १ ॥
[दातुं दुष्करं निजकधनं, कर्तुं न तपः प्रतिभाति।
एवं सुखं भोक्तुं मनः परं भोक्तुं न याति ॥ १॥]

अपना धन देना दुष्कर है, तप करना अच्छा नहीं लगता, यों ही सुख भोगने का मन है पर उसका भोग किया नहीं जाता ॥ १ ॥) एप्पि आदि का उदाहरण—

जेप्पि चएप्पिणु सयलधर लेविणु तवु पालेवि।
विणु सन्तें तित्थेसरेण को सक्कइ भुवणे वि ॥ २ ॥
[जेतुं त्यक्तुं सकलां धरां लातुं तपः पालयितुम्।
विना शान्तिना तीर्थेश्वरेण कः शक्नोति भुवनेऽपि ॥ २ ॥]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(सम्पूर्ण पृथ्वी को जीतना, (जीतकर) त्यागना, तप लेकर पालन करना, यह सब विना शान्ति तीर्थेश्वर (तीर्थंकर) के संसार में कौन कर सकता है। ॥ २ ॥)

गमेरेप्पिण्वेप्प्योरेर्लुग् वा ॥ ४४२ ॥

अपभ्रंशे गमेर्धातोः परयोरेप्पिणु एप्पि इत्यादेशयो रेकारस्य लुग् भवति वा ॥ (अपभ्रंश में गम धातु से परे जो एप्पि और एप्पिणु प्रत्यय उनके एकार का विकल्प से लोप होता है।) यथा—लोप होने पर

गम्पिणु वाणारसिहिँ नर अह उज्जेणिहिँ गम्पि ।
मुआ परावहिँ परम-पउ दिव्वन्तरइँ म जम्पि ॥ १ ॥

[गत्वा वाराणसीं नराः अथ उज्जयिनीं गत्वा ।
मृताः प्राप्नुवन्ति परमं पदं दिव्यान्तराणि मा जल्प ॥१॥]

(लोग वाराणसी जाकर अथवा उज्जयिनी जाकार मर कर परम पद प्राप्त कर लेते हैं। अन्य दिव्यलोकों (तीर्थों) को मत कहो (अन्य तीर्थों में परम पद के लिए जाने को मत कहो।)

पक्षे। जहाँ ए का लोप नहीं होगा वहाँ—

गङ्ग गमेप्पिणु जो मुअइ जो सिव-तित्थ गमेप्पि ।
कीलदि तिदसावास-गउ सो जम-लोउ जिणेप्पि ॥२॥

[गङ्गां गत्वा यः म्रियते यः शिवतीर्थं गत्वा ।
क्रीडति त्रिदशावासगतः स यमलोकं जित्वा । २॥]

(जो गङ्गा जाकर मरता है, अथवा शिवतीर्थ (काशी) जाकर मरता है, वह यम लोक को जीत कर देवलोक में जाकर क्रीडा करता है। ॥२॥)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तृनोऽणअः ॥४४३॥

अपभ्रंशे तृनः प्रत्ययस्य अणअ इत्यादेशो भवति॥ (अपभ्रंश में तृन प्रत्यय के स्थान पर अणअ आदेश होता है।) यथा—हत्थि मारणउ लोउ बोल्लणउ पडहु वज्जणउ सुणउ भसणउ ॥१॥

[हस्ती मारयिता लोकः कथयिता ।
पटहः वादयिता शुनकः भषिता ॥]

(हाथी मारनेवाला, संसार कहने वाला, पटह बजने वाला, और कुत्ता भूँकने वाला है।)

इवार्थे नं-नउ-नाइ-नावइ-जणि-जणवः ॥४४४॥

अपभ्रंशे इव शब्दस्यार्थे नं, नउ, नाइ, नावइ, जणि, जणु इत्येते षट् भवन्ति ॥ (अपभ्रंश में 'इव' के अर्थ में नं, नउ, नाइ, नावइ, जणि, जणु से छह आदेश होते हैं।) नं का उदाहरण—

'नं मल्ल-जुज्झु ससि-राहु करहिं ॥ [३८२।१] ॥ नउ का उदाहरण—

रवि-अत्थमणि समाउलेण कण्ठि विइण्णु न छिण्णु ।
चक्कें खण्डु मुणालिअहे नउ जीवग्गलु दिण्णु ॥१॥

[रव्यस्तमने समाकुलेन कण्ठे वितीर्णः न छिन्नः ।
चक्रेण खण्डः मृणालिकायाः ननु जीवार्गलः दत्तः ॥१॥]

(सूर्यास्त के समय व्याकुल चक्रवाक कण्ठ में मृणाल का खण्ड डाला उसे छिन्न नहीं किया, मानो बाहर निकलने वाले जीव को न निकलने देने के लिए अर्गला दे दी हो।) ॥१॥

नाइ का उदाहरण—

वलयावलि-निवडण-भएँण धण उद्धब्भुअ जाइ ।
वल्लह-विरह-महादहहो थाह गवेसइ नाइ ॥२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[वलयावलीनिपतनभयेन धन्या ऊर्ध्वभुजा याति ।
वल्लभविरहमहाह्रदस्य स्ताघं गवेष [य] तीव ॥२॥]

(विरह जन्य कृशता के कारण) वलयावली गिरने के डर से धन्या ऊपर हाथ करके जा रही है मानो वल्लभ के विरह रूपी महाह्रद (महादह-महा सरोवर) का थाह लगा रही है । (पानी में डूब कर थाह लगाते समय ऊपर हाथ कर के पानी में डूबते हैं । एक चित्र खींचा गया है ।) ॥ २ ॥

नावइ—

पेक्खेविणु मुहु जिण-वरहो दीहर-नयण सलोणु ।
नावइ गुरु-मच्छर-भरिउ जलणि पवीसइ लोणु ॥३॥

[प्रेक्ष्य मुखं जिनवरस्य दीर्घनयनं सलावण्यम् ।
ननु गुरुमत्सरभरितं ज्वलने प्रविशति लवणम् ॥३॥]

(जिनवर के दीर्घनयनों तथा लावण्य से युक्त मुख को देख कर लवण मानों ज्वलन (अग्नि) में प्रवेश करता है ॥३॥)

जणि—

चम्पय-कुसुमहो मज्झि सहि भसलु पइट्ठउ ।
सोहइ इन्दनीलु जणि कणइ बइट्ठउ ॥४॥

[चम्पक-कुसुमस्य मध्ये सखि भ्रमरः प्रविष्टः ।
शोभते इन्द्रनीलः ननु कनके उपवेशितः ॥४॥]

(हे सखि, चम्पक कुसुम के मध्य में भ्रमर प्रविष्ट है, ऐसा शोभित हो रहा है मानों इन्द्रनील मणि कनक में जड़ दिया गया है ।)

जणु—निरुवम-रसु पिएं पिएवि ॥ [४०१।३]

लिङ्गमतन्त्रम् ॥४४५॥

अपभ्रंशे लिङ्गमतन्त्रं व्यभिचारिप्रायो भवति ॥ (अपभ्रंश में लिंग अतंत्र होता है—व्यभिचारिप्राय होता है—अर्थात् कोई निश्चय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं कि एक ही लिंग होगा। कभी स्त्रीलिंग पुलिंग भी हो जाता है और कभी पुलिंग स्त्रीलिंग भी हो जाता है।) यथा—गय कुम्भइं दारन्तु [३४५।१]

अत्र पुल्लिङ्गस्य नपुंसकत्वम् ॥ यहाँ पर पुल्लिंग का नपुसंक लिंग हो गया है।

अब्भा लग्गा डुङ्गरिहिं पहिउ रडन्तउ जाइ।
जो एहा गिरि-गिलणमणु सो किं धणहें धणाइ (घणाइ ?) १॥

[अभ्राणि लग्नानि पर्वतेषु पथिकः आरटन् याति।
यः एषः गिरिग्रसनमनाः स किं धन्यायाः धनानि (घृणायते ?) १॥]

(अभ्र (बादल) डूंगरों (पर्वतों) से लगे हैं, पथिक रटता हुआ जा रहा है जो इस पर्वत की निगलने वाला है, वह धन्या पर क्या दया करेगा १॥]

अत्र अब्भा इति नपुंसकस्य पुंस्त्वम् ॥ (यहाँ अब्भा 'अभ्रं, नपुंसक को पुँलिंग हो गया है।)

पाइ विलग्गी अन्त्रडी सिरु ल्हसिउं खन्धस्सु।
तो वि कटारइ हत्थडउ बलि किज्जउँ कन्तस्सु ॥ २ ॥

[पादे विलग्नं अन्त्रं शिरः स्रस्तं स्कन्धात्।
तथापि कटारिकायां हस्तः बलिः क्रियते कान्तस्य ॥ २ ॥]

(प्रियतम के) पैर में अंतडी लगी है, शिर कंधे पर लटक गया है, फिर भी कटारी पर हाथ है। ऐसे कान्त को मैं बलि जाती हूँ)॥ २॥

अत्र अन्त्रडी इति नपुंसकस्य स्त्रीत्वम् ॥ (यहाँ पर 'अन्त्रं' नपुंसकका अपभ्रंश में 'अन्त्रडी' स्त्रीलिंग हो गया है।)

सिरि चडिआ खन्ति प्फलइं पुणु डालइं मोडन्ति।
तो वि महद्दुम सउणाहं अवराहिउ न करन्ति ॥ ३ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[शिरसि आरूढाः खादन्ति फलानि पुनः शाखाः मोटयन्ति ।
तथापि महाद्रुमाः शकुनीनां अपराधितं न कुर्वन्ति ॥ ३ ॥

(पक्षियाँ महान् द्रुमों के शिर पर बैठकर फल खाती हैं, फिर शाखाओं को भी तोड़ डालती हैं फिर भी महाद्रुम उनका कुछ भी अपराध नहीं गिनते) ॥ ३ ॥

अत्र डालइं इत्यत्र स्त्रीलिङ्गस्य नपुंसकत्वम् ॥ (यहाँ 'शाखा' स्त्रिलिंग के स्थान पर 'डालइं' नपुंसक लिंग हो गया है ।)

शौरसेनीवत् ॥ ४४६ ॥

अपभ्रंशे प्रायः शौरसेनीवत् कार्यं भवति ॥ (अपभ्रंश में प्रायः शौरसेनी के समान कार्य होते हैं ।) ॥

सीसि सेहरु खणु विणिम्मविदु
खणु कण्ठि पालंबु किदु रदिए ।
विहिदु खणु मुण्डमालिएँ जं पणएण
तं नमहु कुसुम-दास-कोदण्डु कामहो ॥ १ ॥

[शीर्षे शेखरः क्षणं विनिर्मापितम्
क्षणं कण्ठे प्रालम्बं कृतं रत्याः ।
विहितं क्षणं मुण्डमालिकायां
तन्नमत कुसुमदामकोदण्डं कामस्य ॥ १ ॥]

(क्षण भर में अपने शिर का शेखर बना लिया, क्षण भर में रति के कण्ठ में लटकने का हार बना लिया, क्षण भर में अपने गले में लगा लिया, ऐसे काम के कुसुम दाम कोदण्डको नमस्कार करो ॥ १ ॥)

व्यत्ययश्च ॥ ४४७ ॥

प्राकृतादिभाषालक्षणानां व्यत्यश्च भवति ॥ (प्राकृत आदि आदि के भाषालक्षणों का व्यत्यय (उलटा-पलटी) भी हो जाता है) ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यथा मागध्यां तिष्ठश्चिष्ठः [४।२९८] इत्युक्तं तथा प्राकृत पैशाचीशौरसेनीष्वपि भवति ॥ (जैसे मागधी में [४।२९८] सूत्र के द्वारा तिष्ठ को चिष्ठ हो जाता है वैसे ही (महाराष्ट्री) प्राकृत पैशाची और शौरसेनी में भी होता है ।) चिष्ठदि" अपभ्रंशे रेफस्याधो वा लुगुक्तो मागध्यामपि भवति । (अपभ्रंश में रेफ का नीचे जाना या लोप होना जो कहा गया है, वह मागधी में भी होता है)। शद्--माणुश-मंश भालके कुम्भ-शहश्र-वशाहे शंचिदे इत्यादि अन्यदपि द्रष्टव्यम् । [शत-मानुष-मांस-भाले-कुम्भ-सहस्र वशायाः सञ्चितः इत्यादि] ऐसे अन्य स्थानों पर भी देखना चाहिए ।] न केवलं भाषालक्षणानां त्याद्यादेशानामपि व्यत्ययो भवति । (केवल भाषालक्षण का ही नहीं अपि तु 'ति' आदि प्रत्ययों के आदेशों का भी व्यत्यय होता है ।। ये वर्तमाने काले प्रसिद्धास्ते भूतेऽपि भवन्ति । [जो वर्तमान काल में प्रसिद्ध हैं वे प्रत्यय भूत आदि काल में भी होते हैं ।) यथा—अह पेच्छइ रहु-तणओ (अथ प्रेक्षांचक्रे रघुतनयः) (रघुतनय ने देखा । भूत के स्थान पर वर्तमान प्रत्यय लगा है ।) आभासइ रयणीअरे । [आबभाषे रजनीचरानित्यर्थः] (रजनीचरों को कहा (यहाँ भी भूत के लिए वर्तमान प्रत्यय लगा है ।) भूते प्रसिद्धा वर्तमानेऽपि (भूत में प्रसिद्ध प्रत्यय वर्तमान काल में भी लगते हैं ।) यथा— सोहीअ एस वण्ठो [शृणोत्येष वण्ठः] (सुना है के लिए 'सोहीअ' वर्तमान काल का रूप आया है ।)

शेषं संस्कृतवत्सिद्धम् ॥ ४४८ ॥

शेषं यदत्र प्राकृतादिभाषासु अष्टमे नोक्तं तत्सप्ताध्यायीनिबद्ध-संस्कृतवदेव सिद्धम् ॥ (अवशिष्ट जो महाराष्ट्री आदि प्राकृत भाषाओं में इन आठों अध्यायों में नहीं कहा गया है वह संस्कृत की सप्ताध्यायी के अनुसार ही समझना चाहिए ।)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हेट्ठ-ट्ठिअ-सूरनिवारणाय छत्तं अहो इव वहन्ती ।
जयइ ससेसा वराह-सास - दूरुक्खुया पुहवी ॥ १ ॥

[अधःस्थितसूर्यनिवारणाय छत्रं अधः इव वहन्ती ।
जयति सशेषा वाराहश्वासदूरोत्क्षिप्ता पृथिवी ॥ १ ॥]

(नीचे स्थित सूर्य से निवारण के लिए शेष ही मानो छत्र है, उसे धारण करती हुई पृथिवी जो वाराह के श्वास से शेष के साथ ऊपर फेंकी गई है, वह सुशोभित हो रही है ।) ॥ १ ॥

अत्र चतुर्थ्या आदेशो नोक्तः स च संस्कृतवदेव सिद्धः ॥ (यहाँ पर चतुर्थी के स्थान में जो आदेश होते हैं उन्हें नहीं कहा गया है, वह संस्कृत के ही अनुसार ही सिद्ध हैं । उक्तमपि क्वचित् संस्कृतवदेव भवति । (जो कहीं कोई आदेश कहा भी गया है वह भी संस्कृत के समान ही होता है) ।

यथा प्राकृते उरस् शब्दस्य सप्तम्येकवचनान्तस्य उरे, उरम्मि इति प्रयोगौ भवतस्तथा क्वचिदुरसीत्यपि भवति ॥ (जैसे उरस् शब्द का प्राकृत में सप्तमी के एक वचन में उरे, उरम्मि रूप होते हैं, वैसे ही कहीं कहीं पर उरसि भी होता है । एवं सिरे, सिरम्मि, सिरसि । सरे सरम्मि, सरसि ॥ सिद्धग्रहणं मङ्गलार्थम् । ४४८ सूत्र में सिद्ध ग्रहण मंगल के लिए किया गया है । बिना सिद्ध शब्द रखे भी काम चल सकता था । ततोह्यायुष्मच्छ्रोतृकताभ्युदयश्चेति । इससे आयु बढ़ती है, श्रोतृकता आती है और अभ्युदय होता है ।

इत्याचार्य श्री हेमचन्द्रविरचितायां सिद्धहेमचन्द्राभिधानस्वोपज्ञ-
शब्दानुशासनवृत्तावष्टमस्याध्यायस्य चतुर्थः पादः
॥ समाप्तः ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	४	(सं० वेणो)	(सं० वेणी ! वीणा)
,,	१५	अपभ्र ंश	अपभ्रंश
५	१	अहरें	अहरे
९	१०	करणहिं	करणहिँ
१०	१३	मलेप्पिणु	मल्लेप्पिणु
,,	२३	आयसु	आयरु
११	७	कालिहि	कलिहि,
१५	१	गुणहिं	गुणहिँ
,,	५	त्रिपु	त्रिषु ऋषि
१६	१६	संविलम्	संवलितम्
,,	१९	का दाहरण	का उदाहरण
२०	१२	उस्मिल्लइ	उम्मिल्लइ
२३	१	काल खेवें	कालक्खेवें
२५	२२	वढ	वद
२६	१६	वड्डाइं	वड्डाइं
,,	,,	वड्डा	बड्डा
२७	१४	पजतं	पजत्तं
२९	४	[३३९।१]	[३४९।१]
२९	९	कंगुहे	कङ्गुहे
,,	२०	विहिं	त्रिहिं
,,	२२	द्वाम्यामपि	द्वाम्यामपि
,,	,,	प्रकाराम्यां	प्रकाराम्यां
३०	२१	तुम्ह	तुम्हइ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३१	१०	तेहिं	तेहिँ
,,	१२	तब	तव
३६	२३	॥२॥	॥१॥
४१	२०	बिणु	विणु
,,	,,	बलाहुं	वलाहुं
४४	२१	थणह	थणहं
४५	१३	॥२॥	॥१॥
४६	१०	अतद्विष्यत्	अतद्विष्यत
४७	५	नियत्तइ	निअत्तइ
५१	१३	पिउँ	पिउ
६१	२३	काल	कालि
६२	१	स्थिताः	स्थितः
६२	१२	भनित	भन्ति
६४	१२	बालिउ	वालिउ
,,	२३	पङ्कुडउ	वङ्कुडउ
६६	१४	एत्तहेँ	एत्तहेँ
,,	२२	॥४२४॥	॥४२०॥
७१	२१	खेड्डु	खेड्डु
७२	६	उजण	उज्जाण
७५	१९	वुड्डीसु	वुड्डीसु
७६	१४	॥२॥	॥३॥
८७	१४	भुनणहँ	भुञ्जणहँ
,,	,,	भुन्जणहिँ	भुञ्जणहिँ
८८	१७	॥२१॥	॥२॥
६४	४	वाराह	वराह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi